❊ तृतीय अध्याय ❊

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में ऐतिहासिकता

✳ तृतीय अध्याय ✳

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में ऐतिहासिकता

प्रास्ताविक

3:1 ऐतिहासिकता

3:2 इतिहास का अर्थ एवं परिभाषाएँ

3:2:1 संस्कृत हिंदी कोश

3:2:2 मानक हिंदी कोश

3:2:3 हिंदी शब्द सागर

3:3 ऐतिहासिकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ

3:3:1 संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर

3:3:2 संस्कृत हिंदी कोश

3:3:3 नालंदा अध्यतन कोश

3:4 मुगल सम्राट बाबर का पुर्ववृत्त

3:4:1 भारत में मुगल साम्राज्य का उदय

3:4:2 भारत में बाबर का कालखंड़

3:4:3 बाबर पर लगाए गए आरोप

3:5 सत्रहवी सदी का उत्तराधिकार युद्ध

3:5:1 शहाजहाँ का दौर

3:5:1.1 दारा शिकोह

3:5:1.2 शाहशुजा

3:5:1.3 औरंगजेब

3:5:1.4 मुराद

3:5:2 उत्तराधिकार का संघर्ष

3:5:2.1 औरंगजेब की कुटनीति

3:5:2.2 धार्मिक रूप देने की कोशिश

3:5:2.3 साम्राज्य मे फैलाई हुई अफवाएँ

3:5:2.4 धर्मट का युद्ध

3:5:2.5 बहादूर गढ का युद्ध

3:5:2.6 सामूगढ का निर्णायक युद्ध

3T:5:2.7 दारा का पलायन

3:5:2.8 विश्वासघातों की दास्तान

3:5:2.9 दारा की हत्या

3:6 भारत में विदेशी जाती तथा कंपनियों का आगमण

3:6:1 वास्को ड़ि गामा

3:6:2 अंग्रेजों का भारत प्रवेश

3:6:3 ब्रिटिश सत्ता की स्थापना

3:6:4 प्लासी का युद्ध

3:6:5 बंगाल का नया नबाब मीर कासिम

3:6:6 बक्सर युद्ध

3:6:7 1857 इ. की आझादी जंग

3:6:8 मुस्लिम लीग की स्थापना

3:6:9 पाकिस्तान प्रस्ताव और लीग का बढ़ता प्रभाव

3:6:10 पाकिस्तान निर्माण के कारण

3:6:10.1 मुस्लिंम लीग की स्थापना

3:6:10.2 'इस्लाम' के खतरे की भावना

3:6:10.3 काँग्रेस का बढता हुआ प्रभाव

3:6:10.4 काँग्रेस की तृष्टिकरण नीति

3:6:10.5 द्वितीय विश्वयुद्ध

3:6:10.6 निर्वाचन से निराशा

3:6:10.7 द्वि-राष्ट्र सिद्धांत

3:6:10.8 मुसलमानों में शैक्षणिक पिछड़ेपन

3:6:10.9 अन्य कारण

3:6:11 भारत छोड़ो आंदोलन

3:6:12 1942 से 1947 तक मुस्लिम पृथकतावाद

3:6:13 ब्रिटीश प्रधानमंत्री एटली की घोषणा

3:6:14 भारत के आखरी वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन

3:6:15 भारत विभाजन और आजादी

3:6:16 भारत विभाजन और गांधीजी

3:6:17 मोहम्मद अली जिन्ना

निष्कर्ष

✳ तृतीय अध्याय ✳

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में ऐतिहासिकता

भारत वर्ष प्राचीन काल से ही सुसंस्कृत तथा उन्नत देश रहा है। इसकी सभ्यता विश्व के किसी भी देश की सभ्यता से कम महत्त्व की नहीं थी। इसी धरती पर भगवान बुद्‌ध का जन्म हुआ जिसने संपूर्ण विश्व को अपना कुटुंब माना और समस्त जीवों पर दया, प्रेम करने का शाश्वत संदेश दिया। कलिंग युद्‌ध से सम्राट अशोक ने अंहिंसा का पाठ लेकर दया, प्रेम आदि शाश्वत संदेश का प्रचार एंव प्रसार किया। उन्हीं के शासन काल में भारत वर्ष में ऐसी शिक्षाप्रणाली तथा शिक्षण संगठण हुआ कि संसार के विभिन्न देशों के जिज्ञासू छात्र और ज्ञान विद्‌वान अपनी मानसिक बुभुक्षा की तृप्ति तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए यहाँ आए। यह पहला चरण है।

कालांत में समय परिवर्तित हुआ। भारत वर्ष पर मुसलमानों का शासन रहा। प्रारंभ में सिंकदर, नादिरशाह, अहमदशाह, अब्दाली आदि ने आक्रमण किए। इब्राहीम लोदी ने भारत वर्ष पर कुछ साल राज्य किया। बाबर ने पानिपत के पहले युद्‌ध में लोदी को परास्त करके मुगल शासन की नींव रख दी। आगे चलकर हुमायुँ, अकबर, जहाँगीर, शहाजहाँ, औरंगजेब आदि मुगल शासकों ने योगदान किया। मुस्लिम शासकों ने भारतीय संस्कृति एवं प्रशासन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया जिनमें गियासुद्दिन बलबन, अल्लाउद्‌दीन खिलजी, शेरशाह सूरी, अकबर शहाँजहाँ आदि का योगदान महत्त्वपूण रहा है। यह दूसरा चरण है।

तृतीय चरण में भारत के इतिहास में फिर से परिवर्तन हुआ। भारतीयों की फूट तथा विघटनकारी तत्वों के कारण अठारहवी शताब्दी में भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व जम गया। भारत वर्ष में पहली बार ऐसा हुआ था कि भारत के प्रशासन और भाग्य निर्णय की डोर एक विदेशी जाति के हाथों में चली गई थी। इस तरह की पराधीनता का भारत के लिए सर्वथा एक नया अनुभव था। क्योंकि अतीत में भारत पर कई आक्रमण हुए थे। समय - समय पर भारतीय प्रदेश के कुछ भाग अस्थायी तौर पर विजेताओं के उपविदेशों में शामिल हो गए थे। पर ऐसे अवसर कम ही आये और समय भी अत्यल्प था। शासन

कर्ताओं ने भारतीय संस्कृति को विस्तृत नहीं किया बल्कि अपने पुराने संबंधों को तोड़कर उन्होंने अपना भाग्य भारतीयों के साथ जोड़ दिया। वे भारतीय संस्कृति के रंग में रंगते गए थे।

किंतु अंग्रेजों ने भारत को अपना न मानकर उसे अपने अधिकार की वस्तु और गुलाम देश माना। भारत का इस्तेमाल इंग्लैंड के लिए करना उनका उद्‌देश्य रहा। डेढ़ सौ साल भारत पर राज्य करने के बाद भी वापसी के समय 'विभाजन' की दर्दनाक पीड़ा यादगार के रूप में देकर वे चले गए। अंग्रेजों की कुटनीति, भारत-पाकिस्तान विभाजन के कारण, तथा विभाजन पूर्व और बाद की स्थिति आदि पर 'कितने पाकिस्तान ' उपन्यास में कमलेश्वर ने प्रकाश डाला है।

3.1 ऐतिहासिकता

इतिहास एवं उसकी घटनाओं को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिकता को समझना होगा। ऐतिहासिकता यह शब्द 'इतिहास' इस शब्द से बना है। अत: हमें इतिहास शब्द का अर्थ एंव परिभाषा जानना जरूरी है।

3.1.1 'इतिहास' का अर्थ एंव परिभाषाएँ

इतिहास एक दर्पण है। वह भूत की हू-ब-हू छबि तो रख देता है लेकिन वर्तमान को प्रेरणा भी देता है और भविष्य के लिए सूचनाएँ भी दे सकता है।

विभिन्न शब्द कोशों में 'इतिहास' के अर्थ निम्मानुसार प्राप्त होते हैं -

3.1.1.1 संस्कृत हिंदी कोश

वामन शिवराम आपटे संपादित संस्कृत हिंदी कोश में इतिहास शब्द का अर्थ है -

"इतिहास = (इति - ह - आस) असॅ, धातु

(अ) इतिहास (परंपरा से प्राप्त उपाख्यान समूह)

"धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम्

पूर्ववृत्तं कथायुक्त मितिहासं प्रचक्षते ।"

(आ) वीर (जैसा कि महाभारत)

(इ) ऐतिहासिक साक्ष्य, परंपरा (जिसको पौराणिक एक प्रमाण मानते हैं)

सम- निबंधम् उपाख्यान युक्त या वर्णनात्मक रचना । "[1]

3.1.1.2 मानक हिंदी कोश

रामचंद्र वर्मा संपादित "मानक हिंदी कोश खंण्ड पहला (अ-क) में इतिहास का अर्थ पु.

(अ) किसी व्यक्ति, समाज या देश की महत्त्वूपर्ण विशिष्ट या सार्वजनिक क्षेत्र की घटनाओं तथ्यों आदि का कालक्रम से लिखा हुआ विवरण ।

(आ) किसी वस्तु या विषय की उत्पत्ति, विकास आदि का कालक्रम के अनुसार होनेवाला विवेवचन ही इतिहास हैं।"[2]

3.1.1.3 हिंदी शब्द सागर

श्यामसुंदर दास संपादित 'हिंदी शब्द सागर' के प्रथम खंण्ड में इतिहास का अर्थ निम्न इतिहास-संज्ञा पु. (सं.)

(अ) बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनसे संबद्ध रखनेवाले पुरूषों का कालक्रम से वर्णन ।

(आ) वह पुस्तक जिसमें बीती हुई प्रसिध्द घटनाओं और भूत पुरूषोंका वर्णन हो ।

(इ) किसी विषय से संबंधित तथ्यों का आदिकाल से वर्तमान वर्णन ।

(ई) कथा । वृत्त ।"[3]

इतिहास शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ इस प्रकार किया जाता है -

इति- ह - आस = 'ऐसा हुआ' अथवा यह ऐसा हुआ ।

इति आस (बैठना) बीती घटनाओं को निकटता से परखना इसके अतिरिक्त इतिहास शब्द का अर्थ विकार निम्न प्रकार - इतिहास - अतीत की प्रमाणित सत्य घटनाओं का लेखा जोखा होता है।

इतिहास केवल राजाओं या व्यक्तियों के जीवन का लेखा जोखा नहीं वह युग विशेष की समस्त सांस्कृतिक धरोहर का लेखाजोखा है।

भविष्य के लिए प्रेरक, अतीत की घटनाएँ।

'इतिहास ' शब्द को अर्थ एवं परिभाषाओं को जानने के बाद ऐतिहासिकता शब्द का क्या तात्पर्य है यह देखते हैं -

3.2 संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर

रामचंद्र वर्मा संपादित संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के अंतर्गत ऐतिहासिक की परिभाषा इस तरह प्रस्तुत की गई है -

"ऐतिहासिक वि. (सं.)

(अ) इतिहास संबंधी। जो इतिहास में हो।

(आ) जो इतिहास मानता हो।

ऐतिहासिकता - सं. स्त्री. (सं.)

ऐतिहासिक होने का भाव।

प्राचीनता।"[4]

3.2.2 संस्कृत हिंदी कोश

वामन शिवराम आपटे जी ने संस्कृत हिंदी कोश के अंतर्गत ऐतिहासिक का अर्थ निम्न प्रकार बताया है -

"ऐतिहासिक - (वि.) स्त्री

(अ) इतिहास संबंधी :- इतिहासकार वह व्यक्ति जो पौराणिक उपाख्यानों को जानता है। या उनका अध्ययन करता है।"[5]

3.2.3 नालंदा अध्ययन कोश

पुरषोत्तम अग्रवाल संपादित नालंदा अध्ययन कोश के अंतर्गत ऐतिहासिक शब्द का अर्थ निम्नानुसार है -

"ऐतिहासिक = वि. (सं.)

(अ) ऐतिहासिक = इतिहास से संबंधित जो इतिहास में हो।"[6]

इस प्रकार इतिहास अतीत की सत्य घटनाओं का गवेषणापूर्ण काल-क्रमबद्ध ऐसा विवरण है जो उस समाज देश या व्यक्ति की साधारण घटनाओं के अतिरिक्त पूरे समाज या जाति की संस्कृति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। यह पुराण कल्पित कथा, धर्मशास्त्र नहीं हैं, बल्कि वास्तव जीवन का लेखा है।

ऐतिहासिकता की परिभाषा देखने के बाद हम कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' को देखे तो ऐसा लगेगा कि उपन्यासकार ने लिखा हुआ उपन्यास ज्यादातर ऐतिहासिकता को ही दर्शाता है।

उपन्यास में कमलेश्वर ने सतयुग से लेकर पिछले सालों घटी कारगिल तक की घटनाओं को लिया हैं। कमलेश्वर ने भारतीय संस्कृति के साथ-साथ अन्य देशों की संस्कृति पर भी विचार कर उसे उजागर किया है। उपन्यास में ऐतिहासिकता की दृष्टि से दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं

(1) मुगल साम्राज्य की भारत में स्थापना (बाबर) के कालखंड से 17 वी सदी का उत्तराधिकार युद्धा।

(2) ब्रिटिश सत्ता के आगमन से लेकर भारत की आझादी तक।

कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में मुगल साम्राज्य का उदय, बाबर का कालखंड तथा उन पर लगाए गए आरोपों का खंड़ण किया है। धर्म और

धर्मांधता, 'सत्ता प्रेम' और 'मानव प्रेम' के बीच का संबंध स्पष्ट करने के लिए मुगल बादशाह शहाजहाँ के परवर्ती काल का विस्तार से विवेचन किया है।

3.3 मुगल सम्राट बाबर का पुर्ववृत्त

भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक जहीरूद्दीन मुहम्मद उर्फ बाबर था। "बाबर का जन्म 14 फरवरी, सन् 1483 ई. को फरगना में हुआ था। बाबर के पिता का नाम उमर शेख मिर्जा तथा माता का नाम कुतलुग निगार खानम था। पिताजी तैमुर लंगके वंशज थे, तो माताजी चंगेज खाँ के खानदान में जन्मी हुई थी।"[7]

पिता की मृत्यु के बाद ग्यारह वर्ष की आयु में ही बाबर ने सिंहासन सँभाला। और अपना पहला अभियान पंद्रह वर्ष की आयु में समरकंद की ओर किया था। इस अभियान में संधि हो गई थी।

3.3.1 भारत में मुगल साम्राज्य का उदय

मध्ययुग में मानव जीवन संघर्षमय, और युद्धमय था। ऐसे वातावरण में बाबर का जन्म हुआ था। यह वातावरण इतना दूषित था कि रिश्तेदार तथा सगे-संबंधी भी एक-दूसरे पर आक्रमण करते थे। यही प्रवृत्ति बाबर की भी थी। जब 'फरगना' और 'बुखारा' की सल्तनत बाबर से छिनी गई तो उसकी नजर भारत की और पड़ी। जहाँ उसे सफलता की संभावना अधिक दिखाई पड़ी।

सन् 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त करके भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। बाबर का कहना है कि, "हिंद पर हमला करने के लिए और इसे जीतने के लिए मुझे सुल्तान इब्राहिम लोदी का चाचा दौलत खाँ और हिंदू राजपूत राणा सांगा ने बुलाया था।"8

3.3.2 भारत में बाबर का कालखंड

20 अप्रैल 1526 को भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना करके बाबर ने लगभग साड़े चार वर्षों तक भारत पर शासन किया। अन्त में, दिंसबर 1530 में बाबर कीं मृत्यु हो गयी।

3.3.3 बाबर पर लगाए गए आरोप

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में बाबर पर निन्मलिखित आरोप लगाए गए हैं।

बाबर लिखित 'बाबरनामा' (डायरी) के साढ़े पाँच महीनों के अर्थात् 3 अप्रैल, 1528 से तक के दिनों के पन्नेगायब हैं इसी घटना को लेकर अंग्रेज गजेटियर लेखक एच. आर. नेविल ने यह साफ-साफ लिखा है कि "सन् 1528 की गर्मियो यानी अप्रैल और अगस्त के बीच बाबर अयोध्या पहुँचे, वहाँ तुम एक हप्ता रूके, और तुमने प्राचीन राममंदिर को तोड़ने का आदेश दिया और वहाँ मस्जिद तामीर करवाई जिसे बाबरी मस्जिद का नाम दिया गया हैं ।"[9] मतलब बाबर पर राममंदिर तोड़ने का आरोप लगाया है।

साथ में बाबर पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि इसने तलवार के बलपर मजहब फैलाना चाहा। और महजब के नाम पर हिंदुस्तान पर कहर ढ़ाए।

3.3.4 बाबर पर लगाए गए आरोपों का खंड़न

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में कमलेश्वर ने बाबर पर लगाए गए आरोपों का खंड़न किया है। राममंदिर को तोड़कर मस्जिद बनावाने की घटना ही झगड़े की जड़ है। इसिलिए सत्य की परख के लिए हमे निम्नांकित सवालों पर ध्यान देना जरूरी हो जाता है।

1. क्या बाबर ने ही मस्जिद बनवायी ?
2. बाबर के काल में राम देवता थे या नहीं ?
3. बाबर नामा के पन्ने गायब क्यों हैं ?
4. बाबर धर्मांध थे या नहीं ?

इन सवालों के उत्तर में ही बाबर पर लगाए आरोपों का खंड़न होता है।

3.3.4 1. बाबरी मस्जिद किसने बनवायी

बाबर पर लगाए गए आरोपों में राममंदिर तोड़कर मस्जिद बनवाने की घटना को खंड़न करने के लिए निम्नलिखित सबुत दिए गए हैं ए. फ्यूहरर, जो आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया का डायरेक्टर जनरल ने सन् 1889 में बाबरी मस्जिद पर लगाया हुआ शिलालेख पढ़ा था, जिसमें यह लिखा था कि "हिजरी 930 यानी करीब 17 सितंबर सन् 1523 में इब्राहीम लोदी ने उस मस्जिद की नींव रखवाई जो 10 सिंतबर, 1524 को बनकर तैयार हुई जिसे अब बाबरी मस्जिद कहते है।"[10]

इस शिलालेख को उन लोगों ने बरबाद किया जो बाबरी मस्जिद और राम जन्म भूमि- मंदिर के झगड़े को जिंदा रखना चाहते हैं।

आयोध्या के दंतधावन कुंड़ का पहला महंत छात्रदास जो कि बाबर का समकालीन है उसका कहना है कि " मस्जिद तो खाली जगह पर इब्राहीम लोदी ने बनवायी थी, जिसमें कुछ फेर बदल मीर-बाकी - ताशकंदी ने कारवाई हो। "[11]

इससे यह सिद्ध होता है कि बावरी मस्जिद बाबर ने बनवाई नहीं बल्कि उसका नाम (बाबर) सुबेदार मीर-बाकी -ताशकंदी ने मस्जिद को दिया जो अयोध्या प्रांत का सुबेदार था।

3.3.4.2 बाबर के काल में राम भगवान थे ?

जिस राम जन्मभूमि मंदीर और बाबरी मस्जिद को लेकर आज तक वाद-विवाद हो रहे हैं क्या वे राम बाबर काल में (यानी सन् 1448 से लेकर 1530) भगवान थे ? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बाबर पर रामजन्मभूमि मंदिर तोड़ने का आरोप लगाया है। इस बात को झूठ साबीत करते हुए बाबर का कहता है कि "मैंने कभी तुलसीदास का नाम सुना भी नहीं जिसने हिंदुओं के राम को भगवान बनाया। मेरे दौर में राम भगवान थे ही नहीं तो मैं उनका मंदिर क्यो तोड़ता।"[12]

तुलसीदास का जन्मकाल सन् 1532 माना गया है। तब तो बाबर का देहांत हो चुका था। और "तुलसी के पूर्व रामभक्तों को अपने आश्रयदाताओं की

अतिशयोक्तिपूर्ण प्रंशसा करने से इतना भी अवकाश नहीं था कि वे राम के लोकरक्षक पावन चरित्र की ओर आकर्षित हो पाते। इस युग की कृतियों में मंगलाचरण अथवा स्तुति के रूप में कहीं -कहीं रामकथा के प्रसंग हस्तगत होते हैं।"[13]

अत: तुलसी के काल में राम भगवान हुए। बाबर का कहना है कि "आगरा मेरी राजधानी थी। अब सोचिए उस वक्त हिंदुओं के कृष्ण को भगवान और अवतार मंजूर किया जा चुका था। अगर मुझे तोड़ना होता तो मैं कृष्ण जन्म-स्थान न तोड़ता ? मथुरा आगरा से पचास मील दूर थी। भागा- भागा अयोध्या तक जाके राम का जन्म-स्थान क्यों तोड़ता। क्योंकि राम भगवान हुए तुलसी के बाद। उसने मेरे मरने के बाद रामायण लिखी।"[14]

3.3.4. 3 'बाबरनामा' के पन्ने गायब क्यों हैं ?

बाबर लिखित 'बाबरनामा' के 3 अप्रैल सन् 1528 से लेकर 17 सिंतबर, 1528 तक के पन्ने गायब हैं। इसी बात को लेकर बाबर पर अयोध्या जाके वहाँ का राममंदिर तोड़ने का आरोप लगाया है।

बाबर 2 अप्रैल, 1528 को औध-अवध के जंगलों में शिकार खेलने गया था। पर वह अयोध्या नहीं गया। क्योंकि बाबर की पत्नी मेहम बेगम और बेटी गुलबदन पहली बार काबुल से आगरा आ रहे थी। ये दोनो 8 अप्रैल को आगरा पहुँचनेवाली थी। इसीलिए बाबर को औध से वापस आना पडा। जिसका जिक्र बाबर की बेटी गुलबदन निश्चित 'हुमायँनामा' में हैं।

गुलबदन ने 'हुमायुँनामा' में यह दर्ज किया है कि अब्बा हुजूर ने हमें हिंदुस्तान बुलाया था। अब्बा हुजूर फौरन अवध के जंगलो से शिकार छोडकर हमें लेने के लिए 7 अप्रैल, 1528 से पहले आगरा पहुँच थें। आगरा से अलीगढ़ वे पैदल चल पड़े क्योंकि हम अलीगढ़ के रास्ते से आ रहे थे। 9 अप्रैल 1528 मेहम बेगम और गुलबंदन अलीगढ़ पहुँचे फिर 10 अप्रैल से 10 जुलाई तक अब्बाहुजूर मेहम बेगम के साथ रहे। फिर वहाँ से धौलपुर सीकरी चले आए। अगस्त में धौलपुर से सीकरी और सीकरी से आगरा आने में 15 सिंतबर 1528 की तारीख आ गई। "बाबरनामा के वे पन्ने गायब

किए गये जो इस बात का सबुत थे कि बाबर अवध में गया तो जरूर पर पर आयोध्या कभी नहीं गया।"[15]

3.3.4.4. बाबर धर्मांध था ?

बाबर कालीन धार्मिक परिस्थिति को देखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि बाबर धर्मांध नहीं था। क्योंकि हिंदुस्तान में उस काल साम्राज्यवादी नीति को महत्त्व दिया गया था। रिश्तेदार सगे संबंधी एक दूसरे पर आक्रमण करते थे। मुसलमान- मुसलमान के खिलाफ लड़ता था। जैसे बाबर ने इब्राहिम लोदी को परास्त करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

बाबरी मस्जिद का संबंध बाबर से जोडते हुए लखनऊ गजेटियर के लेखक अफसर कनिंघम ने सैतानी से यह लिखा है कि "बाबरी मस्जिद की तामीर के दौरान हिंदुओं ने तामीर होती मस्जिद पर हमला किया था। और उस जंग में मुसलमानों ने एक लाख चौहत्तर हजार (1,74,000) हिंदूओं को हलाक किया था . . . उन्हीं हिंदुओं के खून से मस्जिद के लिए गारा बनाया गया था।"[16]

फैजाबाद गजेटियर के लेखक नेविल ने लिखा है कि सन् 1871 ई. में अयोध्या - फैजाबाद की आबादी 11,643 थी। फिर 1528 ई. में आबादी क्या रह होगी तब 1,74,000 हिंदु कैसे मारे जा सकते हैं। यह सच है कि बाबर ने हिंदुस्तान को लुटा। लेकिन धर्म का सहारा कभी नहीं लिया। बाबर को हिंदुस्तान बुलानेवाले राणासांगा और दौलत खाँ है। बाबर कहता है कि "हिंदुस्तान मेरे लिए हिंदुओं का मुल्क नहीं तो सोने का मुल्ड था। सिंधु नदी की रेती में सोने के जर्रे बहकर आते थे। सिंध इलाके का राजा सोने की रेत निकलवाता और फारस के सम्राट साइरस उसे की तिजारत करता। मैं उस सोने की चिडियाँ पर कब्जा करना चाहता था।

इस प्रकार बाबर पर लगाए गए आरोपों का खंड़न किया जाता है।

3.4 सत्रहवी सदी का उत्तराधिकार युद्ध

शहाजहाँ के राज्य काल की अंतिम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना उत्तराधिकार का युद्ध था। यह पहला उत्तराधिकार का युद्ध था जो शहाजहाँ के जीवन काल में ही हुआ। यह युद्ध सत्रहवी सदी का सर्वाधिक भीषण रक्तपातवाला युद्ध था। इस्लाम में उत्तराधिकार के लिए कोई निश्चित नियम नहीं था। अत: यह सदैव शासकों के सामने गंभीर समस्या उत्पन्न करता रहा। मुस्लिम जगत में खलिफा अर्थात् राजा ही निर्णायक था, जो किसी भी योग्य व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र का शासक नियुक्त कर सकता था। परंतु शासनकर्ताओं ने व्यवहार में इसका पालन बहुत कम किया।

मुगल साम्राज्य के संस्थापन के पश्चात् भी उत्तराधिकार के नियम की अनिश्चतता बनी रही। हुमायूँ एवं अकबर अपने पिता के जेष्ठ पुत्र थे और जहाँगीर का कोई भाई नहीं था। फिर भी ये लोग सरलता से शासक नहीं बने। हुमायुँ का विरोध कामरान तथा उसके भाइयों ने किया। मिर्जा हकीम ने अकबर का तो जहाँगीर का विरोध खुसरो ने किया। शहाजहाँ के सिंहासन रोहन का विरोध उसका बड़ा भाई शहरयार ने किया था।

3.4.1 शहाजहाँ का दौर

शहाबुद्दीन् मोहम्मद शहाजहाँ का जन्म सन् 1592 ई. में राजपुत राजकुमारी के गर्भ से हुआ था। जहाँगीर ने शहाजहाँ की शिक्षा - दीक्षा का समुचित प्रबंध किया था। इ. 1611 में शहाजहाँ की शादी नुरजहाँ की भतीजी तथा आसफ खाँ की पुत्री अर्जुमंद बानो से हुई। 1621 ई. तक मेवाड और दक्षिण की अपार सफलता ने शहाजहाँ को सर्वोच्च शिखर पर बिठा दिया।

शहाजहाँ ने भविष्य में सिंहासन प्राप्त करने के लिए रणनीति बनानी शुरू कर दी। उसने शाही सेना के महावत खाँ की साहायता प्राप्त कर ली थी। शहाजहाँ अपने पिता के खिलाफ विद्रोह किया था। "1627 ई. के अक्तूबर महिने में लाहौर से लौटते वक्त जहाँगीर की मौत हो गई और उत्तराधिकार हेतु व्यापक संघर्ष प्रारंभ हो गया। शहाजहाँ का बड़ा भाई शहरयार ने लाहौर में स्वयं को सम्राट घोषित किया। शहाजहाँ का सरदार

आसक खाँ ने शहरयार पर आक्रमण करके उसे बंदी बनाया . . . और उनके समर्थकों सहित वध करवा दिया।"[17]

6 फरवरी, 1628 को शहाजहाँ का सिंहासन रेहन हुआ। उसके पश्चात् शहाजहाँ ने सामाज्यवादी नीती का अवलंब करते हुए विजय हासिल किये और मुगल साम्राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया। 6 सितंबर, 1657 ई. को शहाजहाँ गुर्दे की बीमारी से परेशान हो गया। शहाजहाँ की बीमारी के साथ ही उत्तराधिकार का युद्ध उसके पुत्र दारा शुजा औरंगजेब और मुराद के बीच शुरू हुआ।

3.4.1.1 दारा शिकोह

दारा शहाजहाँ का सबसे बड़ा तथा प्रिय पुत्र था। प्रारंभ से ही शहाजहाँ ने दारा को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय लिया था। " उत्तराधिकार युद्ध से पहले ही शहंशाह शाहजहाँ ने सोने का एक सिंहासन बनवा कर अपने तख्ते-ताउस की बगल में रखवाया था, जिस पर उन्होंने दाराशिकोह को बैठाया था।"[18] शिक्षा में विशेष रुचि होने के कारण दारा शीघ्र ही फारसी, अरबी, तुर्की, हिंदी, संस्कृत आदि भाषाओं का विद्वान बन गया। उसने अथर्व वेद तथा उपनिषदों का अनुवाद भी किया था । साथ ही दारा ने हिंदू, इसाई आदि विभिन्न धर्मों का भी अध्ययन किया था। जिससे उसका दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार हो गया था। दारा ने सम्राट अकबर की शांति सद्भाव और सहिष्णुता की नीति का पालन किया था। इसी कारण कट्टर पंथी मुस्लिम वर्ग उससे नाराज था।

दारा सुसंस्कृत तथा विद्वान व्यक्ति होने के बावजूद भी एक शासक के नाते उसमें राजनीति, कुटनीति और सैन्य विशेषज्ञता आदि गुणों का अभाव था। शहाजहाँ के पास रहने के कारण उसे कभी दुर्गम्य सैनिक अभियानों तथा युद्धों में जाने का अवसर नहीं मिला। शहाजहाँ के बीमार पड़ने के वक्त दारा और पंजाब का सुबेदार था।

3.4.1.1 शाहशुजा दिल्ली

शुजा शहाजहाँ का द्वितीय पुत्र था। यद्यपि शुजा एक साहसी और कुशल योद्धा था। तथापि वह विलासी और मदिरापान करनेवाला था। उसके दुर्गुणों ने भी

असे अयोग्य और दुर्बल बना दिया था। यह 'शिया ' मत का समर्थक था। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय शुजा बंगाल का सुबेदार था।

3.4.1.3 औरंगजेब

शहाजहाँ का तृतीय पुत्र मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब था। जो धर्मपरायण मुसलमान था। "अपने राजनैतिक लाभ हेतु ही औरंगजेब ने कट्टर पंथियों को संतुष्ठ करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त युद्ध कला, और सैन्य प्रतिभा की दृष्टि से औरंगजेब समस्त भाइयों में सर्वाधिक योग्य और प्रतिभाशाली था। उसने शहाजहाँ के साथ मध्य एशिया, दक्षिण तथा गुजरात के अभियानों में अपनी उत्कृष्ठ सैन्य क्षमता का प्रदर्शन किया था।"[19] उत्तराधिकारी के संघर्ष के समय वह दक्षिण का सुबेदार था।

3.4.1.4 मुराद

मुराद शहाजहाँ का सबसे छोटा पुत्र था। यद्यपि मुराद भी साहसी वीर योद्धा था किंतु उसकी विलास प्रियता जैसे दुर्गुणों ने उसे दुर्बल बना दिया था। मुराद में युद्धकला, तथा नेतृत्व क्षमता का अभाव था। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय वह गुजरात का सुबेदार था।

संक्षेप में इन चार शहजादों के बारे में कहना हो तो " यह चारों चार दिशाओं की तरह अलग-अलग चल पड़े दारा तौहीद की तलाश में उपनिषदों की ओर चल पड़ा। वजीर सादुल्ला खाँ की गिरफ्त में आकर औरंगजेब कट्टर तासुबी मुसलमान बनता गया। शुजा सिया बनने की ओर झुकता जा रहा है और वह मुराद तो बस शराब और शबाब का गुलाम हो गया है।"[20]

शहाजहाँ को इन चार बेटों के अलावा तीन पुत्रियाँ भी थी। जहाँआरा, जो दारा का साथ देती थी तो रोशनआरा ने खुलेआम औरंगजेब का साथ देकर उत्तराधिकार के लिए उसे प्रेरणा दी थी। गौरआरा मुराद के पक्ष में थी।

3.4.2 उत्तराधिकार का संघर्ष

अक्तूबर 1657 ई. में. शहाजहाँ अपने गिरते स्वास्थ के कारण आगरा आ गया। शहाजहाँ की अस्वस्थता का समाचार मिलते ही सभी शहजादे सत्ता प्राप्त करने हेतु संघर्ष की तैयारी करने लगे। सर्वप्रथम मुराद ने प्रांतीय दीवान की हत्या करके अपनी स्वंतत्रता की घोषणा कर दी। उसके पश्चात् शुजा ने भी अपनी स्वंतत्रता की घोषणा करते हुए राजधानी की ओर प्रयाण किया। औरंगजेब भी पूर्ण तैयारी के साथ आगरे की ओर चल पड़ा।

3.4.2.1 औरंगजेब की कूटनीति

शहाजहाँ के बीमार पड़ते ही औरंगजेब ने शुजा और मुराद के साथ एक अलिखित संधि कर ली। तीनों विद्रोही शहजादों के बीच शंहशाह तथा दारा के खिलाफ गुप्त समझौता हो चुका था। "दारा के बाद औरंगजेब शुजा को अपने भावी शत्रु के रूप में देख रहा था। इसीलिए औरंगजेब ने अलग से मुराद के साथ एक और संधि कर रखी है। उसने एक गुप्त-लिपि ईजाद की है, उसकी कुंजी भी उसने मुराद को 23 अक्तूबर, 1657 में भिजवाई ताकि उसकी गुप्त तहरीर का अर्थ मुराद और मुराद की गुप्त तहरीर का अर्थ सिर्फ वह समझ सके।"[21]

3.4.2.2 उत्तराधिकार युद्ध को धार्मिक रूप देने की कोशिश

औरंगजेब जो कि एक कुटनीतिज्ञ था। उसने विलासी, अयोग्य, बड़बोला मुराद को धार्मिकता के जाल में फास कर उसे कट्टर सुन्नी बनाने का प्रयास किया। "उसने 'अपने' तीनों के लिए 'अनेकेश्वर वादी' - मुल्हिद दारा को दुश्मन बताया और अपन दोनो के लिए उसने मुराद को बताया कि शुजा 'फ्रीजी' अर्थात् विधर्मी सिया है . . . मुराद के मन में यह बात भी बैठा दी है कि शंहशाही के लिए वह तीनों में सबसे अधिक योग्य है। "[22]

3.4.2.3 साम्राज्य में फैलाई हुई अफवाएँ

औरंगजेब ने शंहशाह शहाजहाँ की बीमारी के बारे में कुछ और ही अफवाएँ फैलानी शुरू कर दी। सबसे पहले उसने यह अफवा फैला दी कि शहाजहाँ जिंदा नहीं रहे। "शहाजहाँ की मौत हो गई है।" शहाजहाँ इस अफवा के फैलने से होने वाले खून-खराबे को देख सकता था। शंहशाह ने अफवाह को गलत शाबित करने और प्रजा को विश्वास में लेने के लिए 14 सितंबर, 1657 को किले के नीचे जमा हुए हजारों लोगों को शयनगार के झरोखे से दर्शन दिए। "पर औरंगजेब मामूली आदमी नहीं था उसने जोर-जोर से यह प्रचारित किया कि शंहशाह अब जीवित नहीं हैं और जो आदमी शयनगार के झरोखे से प्रजा को दर्शन देता रहा है, वह एक बुढा खोजा है, जिससे राजसी वस्त्र पहनाकर दर्शन देने का नाटक किया जाता रहा।"[23]

मगर जब औरंगजेब की पक्षधर बहन रोशनआरा ने बादशहा की मौत का खंड़न किया तो फिर औरंगजेब ने पैतरा बदलकर कहा कि "दाराशिकोह ने बीमार शंहशाह का अपहरण करके उन्हें बंदी बना लिया है, और सर्वोच्च सत्ता पर अधिकार कर लिया है।"[24]

इस तरह की अफवाएँ फैलाकर तीनों विद्रोही शहजादे आगरा की ओर बढ़ने लगे ।

3.4.2.4 धर्मट का युद्ध

उत्तराधिकार के लिए तीनों शहजादे रातधानी आगरे की तरफ बढ़ने लगे। दारा शिकोह को जब यह खबर मिली तो उसने जसवंतसिंह तथा का सिम खाँ के नेतृत्व में विशाल सेनाएँ शहजादों के विरूध्द भेजी। और शहजादों को वापस लौटने के लिए बाध्य करना और औरंगजेब और मुराद की सेना को सम्मिलित न होने देने का आदेश दिया।

औरंगजेब ने अपनी चतुराई और रणकौशल्य का परिचय देते हुए अपनी सेनाओं को मुराद की सेनाओं तक पहुँचा दिया। "15 अप्रैल, 1658 को धर्मट के मैदान में शाही सेना और औरंगजेब, मुराद की सेना में भीषण युद्ध हुआ। शाही सेना कासिम

खाँ की सेना के मुसलमान सिपाहियों ने विश्वासघात किया। और धर्मट के युद्ध में शाही सेना की पराजय हो गयी।"[25]

3.4.2.5 बहादुरगढ़ का युद्ध

शहंशाह की मृत्यु की झूठी खबर को बहाना बनाकर शुजा ने दारा के बिहार प्रांत पर आक्रमण करके मुंगेर किले की माँग की। शुजा की बढ़ती हुई फौज को रोखने के लिए दारा शिकोह ने अपने पुत्र सुलेमान शिकोह के नेतृत्व में शाही फौज को बनारस की ओर भेज दिया। सुलेमान शिकोह का सलाहकार जयपुर के मिर्झा राजा जयसिंह थे जो कि औरंगजेब का अघोषित समर्थक था। और वह नहीं चाहता था कि औरंगजेब की योजना में शामिल शुजा को कोई नुकसान पहुँचाया जाए।

सुलेमान शिकोह ने अपना पड़ाव बहादुर गढ़ में डाला। शुजा अपनी फौजों को लेकर बढ़ाता ही गया। आखिर 14 फरवरी, 1658 की सुबह सुलेमान शिकोह ने शुजा पर आक्रमण कर दिया। बहादुरगढ़ के युद्ध में शुजा परास्त होकर पटना की ओर भागा। "सुलेमान शिकोह को निर्णायक विजय हासिल हुई थी और दो करोड रूपये से ज्यादा की दौलत और युद्ध साम्रगी उसके हाथ आई थी।"[26] भागे हुए शुजा को गिरप्तार करने के लिए मिर्झाराजा जयसिंग को पटना की ओर भेज दिया गया। मगर जीतने के बाद भी मिर्झाराजा जयसिंह पराजित शुजा के साथ शांतिवार्ता में उलझता रहा। सुलेमान शिकोह को मिर्झाराजा जयसिंह की साजिश तथा विश्वासघाती रूप समझ में आया था।

3.4.2.6 सामूगढ़ का निर्णायक युद्ध

धर्मट विजय के पश्चात् औरंगजेब शीघ्रता से आगे बढ़ने लगा। इस बढ़ती हुई फौजों को रोकने के लिए मिर्जा राजा जयसिंह को बिहार से जल्दी वापस आने का हुक्म शहंशाह शहाजहाँ ने दिया। आगरा लौटते समय सुलेमान शिकोह अपनी फौज जयसिंह की फौज के पीछे रखना चाहता था क्योंकि विश्वासघाती जयसिंह कभी भी पीछे से हमला करके सुलेमान को परास्त कर सकता था।

औरंगजेब और मुराद की बढ़ती हुई सेना को रोकने के लिए दारा शिकोह शाही सेना को लेकर 22 मई, 1658 धौलपुर पहुँचा। 23 मई, 1658 को औरंगजेब ने दारा पर आक्रमण किया। दारा ने भागकर सामूगढ़ में आश्रय लिया। "सामूगढ़ रेतीले मैदान में दारा ने अपनी फौजें तैनात कर दी थी। उसका तोपखाना बर्क दाजखाँ और मनुची के हवाले था। इस तोपखाने के पीछे पैदल फौजियों के शानदार दस्ते थे, उनके पास तोड़ेदार बंदूके थी। इनके पिछे पाँच सौ उँट थे, जिनकी पीठों पर चक्कट दार तोपें मौजूद थी। इनके पीछे लड़ाकू हाथियों की कतारे थीं। बीचों - बीच दस हजार सैनिकों का दस्ता था - इसमें खुद हाथी पर सवार शहजादा दारा था।"[27] दारा के साथ खलील उल्लाह, छत्रसाल, दाऊद खाँ, रूस्तम खाँ, सिपिहर शिकोह आदि थे।

29 मई, 1658 को सामूगढ़ के प्रसिद्‌ध युद्‌ध क्षेत्र में औरंगजेब और दारा के मध्य निर्णायक संघर्ष हुआ। जिसमें औरंगजेब ने दारा की शाही सेना को परास्त करके निर्णायक जीत हासिल की थी। इस युद्‌ध में दारा का शिपाई खलील उल्लाह की फौज ने गद्‌दारी की थी । और इसी वजह से दारा हार गया था। अपने विश्वस्त साथियों को लेकर किसी तरह जान बचाकर दारा आगरा की तरफ भाग निकला। और यही से दारा की पलायन और विश्वासघात की दास्तान शुरू हो जाती है।

3.4.2.7 दारा का पलायन

21 मई, 1658 के सामूगढ़ के युद्‌ध में परास्त होते ही दारा आगरे की तरफ भाग निकला। दारा ने अपनी बेगम नादिरा बानू अपने बच्चों, नाती पोतों और बचे हुए वफादार सिपाहियों को लेकर दिल्ली की तरफ निकल गया। 3 जून को औरंगजेब ने आगरा राजधानी को चारों तरफ से घेर लिया। तब तक दारा दिल्ली पहुँच चुका था। दारा अपने आपको लाहौर तथा इलाहाबाद में सुरक्षित महसूस कर रहा था, इसीलिए वह १२ जून 1658 को दिल्ली से चलकर 3 जुलाई, 1658 को लाहौर पहुँचा। " वहीं मुझे जम्मू के राजपूतों का राजा राजरूप मिला . . . उसने साथ देने का वादा किया . . . मेरे संबंधों को हिंदुस्तानी प्रतिज्ञा में बाँधने के लिए मेरी बेगम नादिरा ने अपना दूध उसे भेजा। वे माँ-बेटे संबंधो में बँध गए।"[28]

औरंगजेब का सेनापती बहादुर खाँ दारा का पीछा करके रहा था। और मिर्झाराजा जयसिंह और खलिल उल्लाह बहादुर खाँ की मदद के लिए आ रहे थे। औरंगजेब की सेना ने सतलज नदी पार करके दारा के सामने संकट खड़ा किया था। तब दारा ने लाहौर से मुलतान की ओर प्रयाण किया। वह 4 सितंबर 1658 को मुलतान पहुँचा। मुलतान से दारा भक्कर की ओर चला गया। जहाँ से पचास मील नीचे कंधार होकर ईरान जाने का रास्ता था। अब तक दारा के विश्वस्त सिपाही एक-एक करके घर लौट गए थे। भक्कर में ही विदेशी तोपची मनुची और सिपिहर शिकोह दारा के पास पहुँच गए।

व्यास नदी के तट पर जाकर जम्मू का राजा राजरूप औरंगजेब की फौजों से मिल गया। दारा कंधार से होकर ईरान के शासक शाह अब्बास के पास जाना चाहता था। पर बेगम नादिरा तथा अन्य औरतों ने इरान जाकर शहा अब्बास की वहशत का शिकार बनना मंजूर नहीं किया। भक्कर से 14 मार्च, 1659 को दारा ने गुजरात कच्छ की ओर प्रयाण किया। दारा के पास सिर्फ चार सौ सैनिक की कुमुक रही थी, और जान बचाने के लिए कच्छ से कंधार के रास्ते से अफगानिस्तान पहुँचना चाहता था "क्योंकि अफगानिस्तान में दादर रियासत का अधिपति मलिड जीवन मौजूद था, जिसे अब्बा शंहशाह के कोप और मौत से दारा ने बचाया था।"[29]

दादर रियासत में आकर दारा की पलायन की दास्तान खत्म होती है। क्योंकि मलिक जीवन ने 9 जून, 1659 को दारा और सिपिहर शिकोह को बोलन दर्रे के तरफ प्रयाण करते वक्त गिरप्तार किया। और 23 जून 1659 को औरंगजेब का सेनापति बहादुर खाँ के हाथ में दारा और सिपिहर को सपुर्द किया।

इस तरह दारा 29 मई, 1659 तक भागता रहा। इन तेरह महिनों में उसने पूरे हिंदुस्तान की खाक छानी। पर हर बार उसे विश्वासघातों का ही सामना करना पड़ा।

3.4.2.8 विश्वासघातों की दास्तान

उत्तराधिकार के युद्ध की स्वार्थांधता यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इसी की पूर्ति के लिए इतिहास में बार-बार विश्वासघात कि ये गये हैं। दारा शिकोह के

कालखंड़ में तो इसकी फसल अधिक मात्रा में पैदा हुई थी। दारा का कहना है कि "मैंने जिस मुश्तरका संस्कृति के लिए अपने दादाजान अकबर के बाद कोशिशे की थी, उसमें मुझे औरंगजेब की ताकत ने नहीं मेरे मुल्क और वतन के हिन्दू राजे - महाराजों ने शिकस्त दी थी . . . एहसान फरामोशी और भितरघात का इतना शर्मनाक रवैया ही हिंदुतान की सांस्कृतिक बरबादी और तबाही की दर्दनाक दास्तान है।"[30]

दारा के अंतिम दिनों में जोधपुर का महाराजा जसवंतसिंह, जो दारा से अपनी दोस्ती और वतनपरस्ती की कसमें खाता था उसने विश्वासघात किया। जयपुर के मिर्झा राजा जयसिंह ने तो खुलेआम औरंगजेब का साथ दिया था। मेवाड के महाराजा जयसिंह, जिसकी रक्षा दारा ने आलावजीर और औरंगजेब से की थी - वह भी बांसवाडा, डुंगरपुर, बसावर के साथ गाँच और परगनों की रिश्वत लेकर दाराशिकोह के खिलाफ हो गया था।

जम्मू का राजा राजरूप, जिसके लिए नादिरा बानू ने अपना दूध भेजा था उसने भी देवराई के निर्णायक युद्ध में दारा का साथ छोड़कर दारा की सेना पर ही आकस्मित हमला किया था। मलिक जीवन का तो दारा ने शहंशाह शहाजहाँ से जीवनदान दिया था पर उसने विश्वासघात किया। "जैसे ही हिंदुस्तान का शहजादा दाराशिकोह बोलन दर्रे से कंधार की की ओर चल पड़ा और पथरीली सड़क पर पहुँचा तो मलिक जीवन और उसकी बर्बर सेना दारा को घेर लिया . . . बल्कि उसे गिरफ्तार कर लिया। और उसने दारा की गिरफ्तारी की खबर दो तेज घुसवारों के जरिए औरंगजेब के उन सिपहसालारों को भेज दी।"[31]

इस तरह दारा विश्वासघातों का शिकार बनता गया। और अंत में मलिक जीवन ने बंदी बनाकर औरंगजेब से जागीरे खिलवत, ओहदा साथ में हिंदू -पठाण से धर्म - परिवर्तन करके मुसलमान बख्तियार खाँ बन गया।

3.4.2. दारा की हत्या

दारा शिकोह और उसके बेटे सिपिहर को लेकर बहादुर खाँ और जयसिंह दिल्ली आ गए। उन दोनों को दिल्ली के शहाजहाँनाबादवाली सड़क के मुहल्ले खवास पर

की हवेली में बंदी बनाकर रख दिया। 21 अगस्त, 1659 को दारा का 'अपमान- जुलूस' निकाला। जुलूस के वक्त शहजादा दारा से प्यार करनेवाली जनता का क्रोध देखकर भयभीत औरंगजेब ने एक कुटनीतिक सभा बुलाई। और जिसमें किसी तरह से भी दारा को प्राणदंड दिया जाए ऐसी तजबीज की।

दारा के विरोधी दरबारी खलीलुल्लाखाँ शाइस्ता खाँ और हकिम तबर्रूकखाँ आदि सभा में हाजिर थे। "उल्लेमा, मुल्ला, मौलवी शुरू से ही 'विधर्मी' दारा के खिलाफ थे। शरीयत और महजब के विद्‌वानों - धर्मशास्त्रियों को दारा से तरह- तरह के खतरे थे। . . . दरबारी दानिशमंद के हस्तक्षेप को अस्वीकार करके दारा शिकोह के विरूद्‌ध मौत का फतवा जारी कर दिया।"[32]

दारा शिकोह को मौत दी जाए, यह फतवा जारी करने के बाद दूसरे दिन 30 अगस्त, 1659 को मलिक जीवन को औरंगजेब के लिए की गई वफादरी के लिए मुगल सांमतवर्ग में मलिक हजारी बनया गया। "आलमगीर नामा नामक इतिहास कि पुस्तक में लिखा है कि दाराशिकोह को सिर्फ धार्मिक फतवे के तहत कत्ल किया गया। धार्मिक फतवा तो एक बहाना था, क्योंकि औरंगजेब दाराशिकोह की हत्या करने की बात पहले ही तय कर चुका था।"[33]

30 अगस्त, 1659 ई. की रात के आखरी पहर में शफीखाँ और जल्लाद नजरबेग ने दारा का कत्ल किया। "जिस दिन दारा शिकोह का सिर कलम हुआ उसी दिन हिंदुस्तान की बनती एक सहिष्णु और नई तहजीब का सिर भी कलम हो गया।"[34] आगे औरंगजेब एक-एक करके अपने भाईयों को मारकर निर्विवाद रूप से भारत का शासक बन गया।

वास्तव में औरंगजेब दारा की तुलना में श्रेष्ठ योद्‌धा , कुटनीतिज्ञ तभा सैन्य प्रतिभा संपन्न था। औरंगजेब की नेतृत्व शक्ति शहाजहाँ के मध्य एशियाई अभियानों तथा दक्षिणी अभियानों की सफलता से स्पष्ट हो जाती है। जब कि दारा शहाजहाँ का प्रिय पुत्र था। राज दरबार में रहता था। अत: अन्य भाइयों में ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। इनके अतिरिक्त वरिष्ठ अमीरों तथा सेनापतियों ने भी दारा का विश्वासघात किया।

जसवंतसिंह कलीमुल्ला खाँ, आदि उसे निरतंर धोखा देते रहे। मलिक जीवन तथा राजरूप आदि राजाओं ने दारा का विश्वासघात किया।

'अनेकेश्वरवादी ' होने के कारण दारा पर काजी, मुल्ला, मौलवी भी क्रोधित थे। कट्टर धार्मिकता दिखाने के लिए उन्होंने धर्म का सहारा लेकर दारा के लिए मौत की सजा सुनवायी। आगे 30 अगस्त, 1659 को दारा का कत्ल किया गया।

3.5 भारत में विदेशी कंपनियोंका आगमन

भारत में विदेशियों का आगमन मुख्यत: दो मार्गों से हुआ। स्थलमार्ग और जलमार्ग से। उन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमा को लाँघकर स्थल मार्गों द्वारा तथा विभिन्न सामुद्रिक मार्गों द्वारा भातरवर्ष में प्रवेश किया। स्थल मार्गों से ही मुसलमान भारत आए थे। मुगल शासकोंने विदेशियों के आगमन को रोकने के लिए बड़ी स्थल सेना तो रखी, किंतु वे जल-सेना के महत्त्व को नहीं समझ सके। इसलिए उनके काल में अरक्षित समुद्र मार्गो से युरोपीय लोग भारत आने में सफल हो गये।

नए सामुद्रिक मार्गों की खोज का सारा श्रेय पुर्तगालियों को प्राप्त होता है। पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी (1393-1460) ने इस दिशा में सराहनीय कदम उठाया। उसने एक प्रशिक्षण संस्थान स्थापन किया जहाँ नाविकों को वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण दिया जाने लगा और उन्हे जल परिभ्रमण कला की बारीकियाँ बतलायी जाने लगी। हेनरी ने सामुद्रिक यात्रियों को विभिन्न प्रकार की मदद देकर यात्रा की उत्प्रेरणा दी। इन सामुद्रिक यात्रियों में एक है वास्को -डि गामा।

3.5.1 वास्को डि गामा

भारत वर्ष में सबसे पहले प्रवेश करनेवाले पुर्तगाली थे, किंतु वे अधिकार बढ़ाने और सत्ता कायम करने की होड़ में पीछे छूट गए। वास्को डि गामा को दक्षिण आफ्रिका में एक हिंदुस्तानी मछुआरा मिल गया था उसे लेकर वास्को डि गामा ने ८ जुलाई, 1497 ई. को अपनी यात्रा प्रारंभ की और उत्तमाशा, अन्यरोप तथा मोजाम्बीक पार करते हुए 'केप ऑफ गुड होफ' होकर भारत के तटीय प्रदेश 'कालीकट' आ गया

17 मई 1498 को कप्लीकट पहुँचा और वहाँ के राजा से व्यापार करने की अनुमति हासिल कर ली। इससे एशिया और युरोप के सबंध में एक नए युग का सुत्रपात हुआ। सामुद्रिक मार्ग की यह खोज विश्व की एक सनसनीखेज घटना थी।

आगे भारत में यूरोप की जिन प्रमुख लोगों का आगमन हुआ उनमें डच,अग्रेंज, फ्रांसीसी उल्लेखनीय हैं। .फिर भी इनमें अग्रेंज खासतौर से उल्लेखनीय है।

3.5.2 अंग्रेंजों का भारत प्रवेश

सोलहवीं शताब्दी में इंग्लैंड के व्यापारी भी पूर्वी व्यापर के मुनाफे में हाथ बँटाने को बड़े व्यग्र थे। सन् 1580 ई. में एलिजाबेथ के शासन-काल में एक अंग्रेज साहसी सर फैन्सिस ड्रेक ने पृथ्वी की परिक्रमा पूरी की। कुछ ही वर्ष बाद सन् 1588 ई. मे अंग्रेजों ने स्पेन के जंगी जहाजों को जीत लिया। इन घटनाओं ने अंग्रेजों के ह्रदय में साहस तथा वीरता की भावनाओं को भर दिया। कुछ अंग्रेज नायक पूर्वी समुद्रों में यात्रा करने के लिए मचल उठे। भारत तथा बर्मा की यात्रा करके सन् 1591 में राल्फ फिच स्वदेश लौटा। सन् 1597 ई. में. लदंन के एक बहादूर व्यापारी ने स्थल मार्ग से भारतवर्ष पहुँचने में सफलता प्राप्त की। उसका नाम जॉन मिल्डेनहॉल था। वह पूर्व में निरन्तर सात वर्षों तक यात्रा करता रहा।

किंतु इंग्लैंड की व्यापरिक समृद्धि एवं विकास का प्रथम वास्तविक महत्त्वपूर्ण कदम 31 दिसंबर, 1600 ई. को उठाया गया। यह इतिहास में एक स्मरणीय दिन है, क्योंकि उस दिन कई अंग्रेंजों को ब्रिटिश शासन की ओर से विशेष अधिकार अधिपत्र अर्थात् 'चार्टर ऑफ प्रिविलेजेज' मिला था। जिससे उन्हें पंद्रह वर्ष तक भारतीय व्यापार पर एकाधिकार मिला। इस चार्टर ने व्यापारियों को कानूनी मान्यता दी और साथ ही उन्हे अपने आपको एक राजनीतिक संस्था के रूप में गठित करने का मौका दिया। जो आगे 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के नाम से नियमित हुई।

अंग्रेजी कंपनी की प्रारंभिक जल यात्रा सुमात्रा, जावा और मलक्का के लिए हुई। जिसका उद्देश्य मसाले व्यापार के लिए एक हिस्सा प्राप्त करना था 13 फरवरी, 1601 ई. को जेम्स लंकास्टर की कप्तानी में जिसका आरंभ हुआ था। दूसरी जलयात्रा

सन् 1604-06 मिडलटन की कप्तानी में हुई थी। सन् 1608 ई. में. जब कि मुगल सम्राट अकबर की मृत्यु हो चुकी थी और बादशाह जहाँगीर नूरजहाँ के प्रणय में अपने होश-हवास खो बैठा था। कुछ अंग्रेज व्यापारियों को लेकर कप्तान हॉकिन्स सुरत बंदरगाह पर आ पहुँचा। यह तीसरी महत्त्वपूर्ण यात्रा थी क्योंकि हॉकिन्स ने जहाँगीर से व्यापार के लिए कोठियाँ कायम करने की इजाजत के लिए प्रयास किया था। पर उस वक्त भारत वर्ष में पुर्तगालियों का प्रभाव था। उन्होंने अंग्रेजों का (व्यापारियों का) विरोध करके हॉकिन्स को दी गई अनुमति को निरस्त कर दिया।

अब ईस्ट इंडिया कंपनी ने निश्चय किया कि भारत से एक व्यापार संधि की जाए और भारत से प्राप्त लाभ की राशि को इंग्लैंड पहुँचाया जाए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सर थॉमस रो को चुना गया। थॉमस रो को मुगल दरबार में राजदूत बनाकर भेजा। यह राजदूत कल्पनाशील मधुरभाषी, विद्वान, परिश्रमी तथा प्रसन्न वदन रहनेवाला व्यक्ति था।

इ. 1615 को अंग्रेज (सौदागर) राजदूत थॉमस रो विलियम पिंच ने जहाँगीर के दरबार में हाजिर होकर अपने वाक्चातुर्य से नूरजहाँ और जहाँगीर को खुश कर दिया। थॉमस रो ने कहा कि "हम कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने ई .स.1600 में एक तिजारती कंपनी कायम की है . . . उसी ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए सुरत बंदरगाह पर फैक्टरी कायम करना चाहते है।"[35] नूरजहाँ और जहाँगीर ने उनकी बात मान ली। और उन्हे सुरत बंदरगाह पर फैक्टरी कायम करने की इजाजत दे दी। इसके पीछे यह कारण था कि थॉमस रो की दवा से जहाँगीर की बेटी मौत के मुँह से वापस आ गई थी।

इस तरह जहाँगीर के काल में ही अंग्रेज सत्ता ने अपने पैर भारत में जमा दिए। इ. सन् 1619 तक सुरत के अलावा आगरा, अहमदाबाद और भड़ौंच आदि में अपनी फैक्टरियाँ कायम करने में अंग्रेजों को सफलता मिल चुकी थी।

3.5.3 ब्रिटीश सत्ता की स्थापना

शहंशाह जहाँगीर का इजाजतनामा पाकर ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक तरफ तो अपनी जड़े मजबूत करनी शुरू कर दीं तो दुसरी तरफ वे हिंदुस्थानी हुकूमत की जड़े

खोदने के तरीके तलाशने लगे। मुगल सल्तनत बिखरने लगी थी। छोटे -छोटे नवाब-रजवाड़े आपस में लड़ने- भिड़ने लगे थे। सौदागर बनकर आई ईस्ट इंडिया कंपनी इन हालातों का फायदा उठाकर जमींदारी और सूबेदारी के सपने देखनी लगी। बंगाल में पैर जमाने के साथ-साथ अंग्रेजों ने मालगोदामों के नाम पर किले बना लिए। मालगोदामों की चौकीदारी के नाम पर फौज खड़ी कर ली। ईस्ट इंडिया कंपनी की यह गैर कानूनी हरकते बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को मंजूर नहीं थी।

ईस्ट इंडिया कंपनी का कर्ता-धर्ता राबर्ट क्लाइव ने धूर्तताभरी साजिशे शुरू कर दी। गोरी वेश्याओं के जरिए उसने नवाब सिराजउद्दैला के सेनापती मीर जाफर को अपना गुलाम बना लिया और उसे राजगद्दी का लालच भी दिया। मीर जाफर के कारण ही सिराजउद्दौला प्लासी का युद्ध हार गया।

3.5.4 प्लासी का युद्ध

अंग्रेजों की बढ़ती मनमानी को रोकने के लिए सिराजउद्दौला ने अंग्रेजों के साथ युद्ध करने का निर्णय लिया। "प्लासी के मैदान में 23 जून 1757 को सुबह नौ बजे दोनों पक्षों के मध्य युद्ध शुरू हुआ।"[36] सिराजउद्दौला के सलाहकार तथा सेनापती मीर जाफर पहले ही धोका देने का निर्णय ले चुका था। मीरजाफर ने गद्दारी कर के अपनी विश्वस्त तुकडी सहित क्लाइव से मिल गया। मीरजाफर के नेतृत्व में लढती हुई सेना को अंग्रेजों के पास जाते देखकर बाकी सेना भाग खड़ी हुई। सिराजउद्दौला भी भाग गया। बाद में मीरजाफर के पुत्र मीरन द्वारा मार डाला गया। क्लाइव बिना लडे ही विजयी हुआ। क्लाइव ने 29 जून 1757 को मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया।

प्लासी की घटना से अंग्रेजों को बंगाल की जर्जर राजनीतिक स्थिति और भारतीय सैनिकों की दुर्बलताओं का भी पता लग गया। सिराजउद्दौला आपसी मतभेद, द्वेष, खोखलापन, षड़यंत्र और कपट के कारण परास्त हुआ था। अंग्रेज इस रहस्य को जान गए कि किसी भी हिंदू को मुस्लिम शासक के विरूद्ध और किसी भी मुसलमान को पैसे तथा गद्दी का प्रलोभन देकर अपने पक्ष में मिलाया जा सकता है।

सन्1757 ई. के बाद भारत और कंपनी की स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया। बंगाल का नवाब मीरजाफर अब कंपनी पर निर्भर करने लगा। क्लाइव के नेतृत्व में मीरजाफर ने शासन करना प्रारंभ किया और शनै: शनै: संपूर्ण बंगाल पर कंपनी का अधिकार हो गया।

मीरजाफर अयोग्य एंव सिद्धांतहीन नवाब था। वह न तो शासन की देखरेख कर सका और न नवाब की शान की रक्षा कर सका। वह अंग्रेंजों को भी संतुष्ट न कर सका। इसी कारण तीन वर्षो के अंदर ही उसे गद्दी छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

3.5.5 बंगाल का नया नवाब मीर कासिम

24 फरवरी, 1760 ई. को क्लाइव इंग्लैड वापस चला गया और हॉलवेल बंगाल का नया गव्हर्नर बना। मीर जाफर की कठिनाइयाँ और बढ़ गई। एक तरफ उसका खजाना रिक्त हो गया और दूसरी तरफ कंपनी के कर्मचारी बंगाल को तेजी से लुटने लगे। राज्य की आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर बुरी होती गई।

अंग्रेज नवाब मीर जाफर की विपरीत प्रतिक्रिया का अनुभव कर रहे थे और अपने विस्तार में उसके शासन को बाधक मानने लगे थे। अत: उन्होने मीर जाफर को पदच्युत करने का संकल्प किया। 29 सितंबर, 1760 ई. को कंपनी ने मीर कासिम से एक संधि भी कर डाली जिसके अनुसार मीर कासिम ने कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले दे दिए। मीर जाफर बिना रक्त बहाए और तलवार उठाए गद्दी से उतार दिया गया और उसकी जगह उसका दामाद मीर कासिम को बिठाया गया।"[37]

मीर कासिम

मीर कासिम योग्य, सर्तक और नियमनिष्ठ प्रशासक था। उसमें काम करने की अत्याधिक शक्ति थी। उसने जिस तत्परता के साथ प्रशासन की कुरीतियों को दूर करने का यत्न किया वह स्तुत्य थी और ऐसी तत्परता उस समय के किसी शासक ने नहीं दिखलाई। "वह बंगाल में भू-राजस्व को सुधार कर प्रान्त की आर्थिक संपन्नता को वापस करना चाहता था और व्यापार के जरिए अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता था। वह

अंग्रेजों की नीति के वास्तविक लक्ष्यों का पूरी तरह ज्ञान भी रखता था। उसका दोष सिर्फ यह था कि वह एक योग्य एवं सेनानायक नहीं था।"[38]

प्रशासन में सुधार लाने के बाद मीर कासिम ने अब आंतरिक व्यापार की सुरक्षा का कार्य करना प्रारंभ किया। व्यापार - सुधार से कंपनी और मीर कासिम में बे-बनाव बढ़ता गया। अंग्रेजों के नीजी व्यापार को नियंत्रित करने के पश्चात् मीर कासिम ने भारतीय व्यापारियों को अंग्रेजों की अधीनता से मुक्ति दिलाने की कोशिश की। इसीलिए मीर कासिम ने अपनी प्रजा तथा सरकार के कल्याण के लिए समस्त आंतरिक व्यापार को करों से मुक्त कर दिया और इस प्रकार देशी व्यापारीयों को भी नि:शुल्क व्यापार करने की आज्ञा दे दी। "व्यापार में अंग्रेज केवल छूट न चाहकर विशेषाधिकार चाहते थे। अंग्रेजों ने इस आज्ञा को अपने विशेषधिकारों पर आघात समझा। फलत : अंग्रेजों ने मीर कासिम के इन कदमों का जोरदार विरोध किया, किंतु नवाब उनके विरोध की चिंता किए बिना ही अपने निर्णय पर अटल रहा।"[39] इस संबध में अब युद्ध ही कुछ निर्णय कर सकता था।

3.5.6 बक्सर - युद्ध

अंग्रेजों ने युद्ध के साथ मीर जाफर को पुन: नवाब बनाने का निश्चय करके उसके साथ संधि कर ली। इसी समय अंग्रेजों की पटना जाती हुई हथियारों से भरी नावों को मुंगेर मे ही रोककर मीर कासिम ने कब्जा कर लिया। ब्रिटीश सेनानायक एलिस ने पटना पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। किंतु मीर कासिम ने तेजी से पटना पर प्रतिहल्ला करके एलिस तथा अन्य दो सौ अंग्रेजों को बंदी बना लिया। नवाब तथा अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ने के लिए यह घटना काफी थी।

अंग्रेजों ने मीरजाफर को पुन: नवाब बना दिया और मीर क़ासिम से युद्ध करने के लिए सेना निकल पड़ी। उन्होंने करवा, मुर्शिदावाद, गोरिया, ऊरी उदयनाला और मुंगेर पर मीर कासिम की सेना को परास्त किया और पटना की और प्रस्थान करने लगी। मुंगेरी के दुर्गपति ने घुस लेकर दुर्ग अंग्रेजों को सुपुर्द कर दिया। तब मीर कासिम ने पटना से भागकर अवध के नवाब शुजाअद्दौला की शरण लेली। उसी समय संयोगपश मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय भी वहाँ उपस्थित था। मीर कासिम ने शाहआलम और शुजाउद्दौला

से मैत्री संबध कायम किया। बदले में शाहआलम को 28 लाख रूपये तो शुजा को बिहार प्रांत मिलने की शर्थ पर शुजाउद्दौला ने 1764 ई.में बक्सर में अंग्रजों के विरूद्ध युद्ध घोषित किया।

22 अक्टुबर,1764 ई.को बक्सर (पटना के निकट) युद्ध - स्थल में दोनो सेनाओं में युद्ध शुरू हो गया। अंग्रेजों का नेतृत्व हैक्टेयर मुनरो कर रहा था। "लड़ाई भयंकर थी, और दोनों पक्षों के लोग समान रूप से घायल हुए। शाहआलम अंग्रेजों को जा मिला। मीर कासिम को सभी मित्रों ने छोड़ दिया। अपना सारा धन गवाँकर वह यत्र तत्र घूमता रहा और अंत में दिल्ली के निकट सन् 1767 ई. में मृत्यु हो गई। भारत का भाग्य निर्णय करनेवाला बक्सर का युद्ध समाप्त हो गया। इस बार भी विजय मुकुट अंग्रेजों के सिर चमक उठा।"[40]

इसी तरह अंग्रेजों ने नवाब सिराजअद्दौला को षड़यंत्र और गद्दारी का शिकार बनाकर प्लासी का युद्ध जीता। और सात साल बाद बक्सर की लढ़ाई जीतकर अंग्रजों ने अपनी उपनिवेशवादी जड़े हिंदुस्तान में जमा ली। बक्सर लडाई के बाद गुलामी की जो जिल्लत हिंदुस्तान ने झेली हैं उससे छुटकारा पाने के लिए और गुलामी को खत्म करने के लिए सन् 1857 का आजादी संग्राम का ऐलान किया। अंग्रेजी हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेकना ही उसका मकसद था।

3.5.7 सन् 1857 की आझादी की जंग

सन् 1857 के वक्त मुगल बादशाह बहादुरशा ने एक फरमान निकाला। जिसके अतंर्गत उन्होने यह ऐलान किया था कि "कोई हुकूमत अपने बाशिंदों के महजब और हुकूम में दखलंदाजी नहीं करती थी, लेकिन इन फिंरगियों ने हमारी रवायतों को तोड़ा हैं। सियाशी साजिशों से हमारे मुश्तरका वजूद पर हमला किया हैं। इसलिए आप चाहे मुसलमान, सैय्यद,शेख, मुगल, पठाण हो या हिंदू बिरहमन, क्षत्री कायस्थ या महाजन हो. . जंगे आजादी का ऐलान हो चुका है। . . . इन फिंरगियों को अपने मुल्क से हमेशा - हमेशा के लिए बेदखल कर दीजिए।"[41]

धीरे- धीरे यह ऐलान कालपी पहुँचा। कालपी में नाना साहब पेशवा और तात्या टोपे ने क्रांति के लिए कमर कस ली। उधर झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजी सत्ता के मनमाने फैसलों का विरोध करते हुए 'मैं ' अपनी झाँसी नहीं दूँगी।' की घोषणा करते हुए क्रांति पथ पर कदम बढ़ाए। आरा बिहार में जगदीश पुर के राजा कुँवर सिंह ने युद्ध का घोष किया। "अब पूरा हिंदुस्तान एक जिंदादिल कौम की तरह जाग उठा हैं। अब न कोई हिंदू हैं न मुसलमान। अब इस मुल्क का हर फरजंद सिर्फ हिंदुस्तानी हैं।"[42]

लेकिन अंग्रेजों ने साजिश करके हमारे कुछ गद्दार मुल्ला-मौलवियों, पाखंड़ी पंड़े-महंतों, और खुद शाही खानदान के अमीर - उमरा लोगों को तोडा। अंग्रेज कमांडर लारेन्स और फायनेंस कमीशनर मार्टिन गिवस ने इन गद्दारों के सामने तख्तोताज, जायदाद और बेशकीमती खिलवतों - जागीरों का लालच दिया था। इसी कारण झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का साथ ग्वालियर ने नहीं दिया। कालपी बिठुर के एक कंपनी परस्त जागीरदार ने तात्या टोपे के साथ गद्दारी की। तात्या टोपे को बंदी बनाकर अंग्रेजों के हवाले किया। आगे तात्या टोपे को फाँसी पर लटका दिया गया। शंहशाह बहादुरशाह के एक सिपहसालार ने दिल्ली का दरवाजा अंग्रेजों को लिए खोल दिया। शहंशाह बहादुरशाह को हुमायूँ के मकबरे से कैद किया गया और उन्हें जलावतनी देकर रंगून भेज दिया गया। जगदीशपुर के राजा कुँवर सिंह शहीद हुए। नाना साहब ने नेपाल में शरण ली। आगे उनका कुछ पत्ता नहीं चला। गद्दारों की वजह से 1857 की आजादी की जंग शर्मनाक पराजय में बदल गई।

सन् 1857 की आजादी की जंग जीतने के बाद अंग्रेज अपनी शक्ति से परिचित हो गए। तथा उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इस क्रांति से भारत में राष्ट्रवाद की ज्वाला प्रज्वलित कर दी है, और भावी आंदोलनकारी सदैव प्रेरित होते रहेंगे। इसीलिए भारतीयों में आपस में फूट और घृणा पैदा करके ही भारत पर शासन कायम रख सकते है। इसीलिए उन्होने सेना के पुर्नजन्म का आधार धर्म और जाति को बनाया। अंग्रेजों की नीति हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच कटुता और वैमनस्य उत्पन्न करने की हो गई। यह एक

सांम्प्रदायिक वैमन्यस्यता भावी राष्ट्रीय आंदोलन में बाधक सिद्ध हुई। जिसका परिणाम आगे देश विभाजन में हुआ। इस आजादी की जंग के बाद भारत और अंग्रेजों में शोषित और शासक ऐसा भाव पनपता गया।

इ. 1857 से 1939 के बीच के कालखंड में भारत में कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटटी यह घटनाएँ इस प्रकार हैं :-

	घटना	**तिथी**
1.	भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना	1885
2.	बंगाल का विभाजन	1905
3.	मुस्लिम लीग की स्थापना	1906
4.	(पहला विश्वयुद्ध)	1914
5.	होमरूल आंदोलन	1915
6.	जालियाँवाला बाग हत्याकांड	1919
7.	असहयोग पार्टी का प्रारंभ	1920
8.	स्वराज्य पार्टी का प्रारंभ	1922
9.	स्वराज्य पार्टी का जन्म	1927
10.	बार्डोली सत्याग्रह	1928
11.	साइमन कमिशन	1930
12.	सविनय अवज्ञा	1930
13.	प्रथम गोलमेज संमेलन	1931
14.	दूसरा विश्वयुद्ध	1939

3.5.8 लीग की स्थापना

'फूट डालो और राज्य करो ' इस गुरू मंत्र के सहारे विदेशी शासक इस देश में दीर्घ अवधि तक बने रहे। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। जिसका उद्देश्य धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठकर कार्य करना था। विशेष रूप से अल्पसंख्यक वर्ग होने के नाते मुसलमानों को प्रभावी ढंग से इसमें शामिल करने की कोशिश की, पर सर सैयद अहमद खाँ जैसे बुध्दिवादीयों ने शुरू से ही काँग्रेस का विरोध किया। अंग्रेजों ने समय के अनुसार मुस्लिम विरोधी रूख छोड़ दिया और वे मुसलमानों से यह मंत्रणा करने लगे कि यदि उन्हें अंग्रेजों का संरक्षण नहीं मिला तो हिंदू बहुसंख्याक देश में उनका शोषण होगा। यह 'फूट' का जहर धीरे-धीरे असर करने लगा और बीस वर्ष बाद सन् 1906 मे 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई।

3.5.9 'पाकिस्तान के लिए प्रस्ताव' मुस्लिम लीग का बढ़ता प्रभाव

साम्राज्यवाद को लश्य बनाते हुए विदेशी शासन ने हिंदू - मुस्लिम 'फुट' को अनिवार्य माना। इसीलिए उन्होंने अपना विश्वविश्वात मंत्र 'फूट डालो और राज्य करो' को नया बाना पहनाया। काँग्रेस नेतृत्व मुस्लिम भावनाओं को जितना आदर और प्रतिनिधित्व देने की कोशिश कर रहा था अंग्रेज सरकार उससे चार कदम आगे बढ़कर मुसलमानों को खुश करने लगी थी। ताकि उनमें यह भावना घर कर जाए कि इस देश में अंग्रेज ही उनके एक मात्र हितैषी हैं।

ब्रिटिशों की 'फूट' नीति अपना काम कर गई। और रहमत अली ने सन् 1933 में 'अभी या कभी नहीं ' (नाऊ और नेवर) शीर्षक पुस्तिका का प्रकाशन -वितरण कराया। इसमें 'पाकिस्तान' की जोरदार माँग करते हुए उसकी रूपरेखा को व्यक्त किया और PAKISTAN के प्रत्येक अक्षर से अर्थ बताया। P- Punjab, A-Afaghanistan, K-Kashmir I-Iran, S-Sindh, T-Turkistan, A- Afaghnistan और बिलोचिस्तान का आखिरी N अक्षर रहमत अली की माँग का इतना असर नहीं हुआ पर विभाजन के बीज बोए गए।

आगे सन् 1938 में हिंदू - मुस्लिम दो राष्ट्रों का सिद्धांत सामने आया। मुस्लिम लीग ने यह दावा करना आरंभ किया कि "भारतीय मुसलमान एक समुदाय नहीं प्रत्युत एक राष्ट्र है, और उन्हें राजनीतिक आत्मनिर्णय का अधिकार है।"[43] दूसरे विश्वयुद्ध के आरंभ होने के समय जहाँ एक ओर काँग्रेस ने सरकार से युद्ध प्रयासों का विरोध करने की नीति अपनायी वही मुस्लिम लीग सरकार से सहयोग करने के मार्ग पर चली। 3 सितंबर, 1939 को अंग्रेजों ने काँग्रेसी मंत्रीमंडल की अनुमति लिए बिना भारत को दूसरे विश्वयुद्ध में शामिल कर लिया। अत: विरोध स्वरूप काँग्रेस ने अक्तुबर, 1939 को त्यागपत्र दे दिया। उसी दिन को लीग ने 'मुक्ति दिवस' मानकर ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया कि लीग को भारतीय मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था स्वीकार करे और लीग की अनुमति के बिना किसी प्रकार के संविधान निर्माण न किए जाए।

आगे सन् 1940 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में 'पाकिस्तान प्रस्ताव' पास किया। तथा मुस्लिम बहुसंख्यक प्रातों का एक अलग पूर्ण प्रभुत्व संपन्न मुस्लिम राज्य स्थापित किए जाने की माँग पेश की। मुस्लिम लीग का स्पष्ट उद्देश 'पाकिस्तान' की प्राप्ति था। पृथक मुस्लिम राज्य की पूर्ति के लिए जिन्ना ने द्वि- राष्ट्र सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

3.5.10 'पाकिस्तान' के निर्माण के कारण

'कितने पाकिस्तान' इस उपनन्यास द्वारा कमलेश्वरजीने पाकिस्तान निर्माण के कारणोंका जिक्र किया है।

1. मुस्लिम लीग की स्थापना :

विदेशी शासकों के प्रोत्साहन पर हुई थी। अंग्रेजों की यह सुनियोजित चाल थी कि भारतीयों में फूट डालकर उन पर शासन किया जाए। लीग की स्थापना का कोई सकारात्मक उद्देश्य नहीं था केवल कुछ प्रतिक्रियावादी मुस्लिम नेता अपनी स्वार्थसिद्धी के लिए देश में सांप्रदायिकता का विष फैलना चाहते थे। मुसलमानों की एकमात्र प्रभावपूर्ण संस्था के रूप में ई. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।

2. 'इस्लाम' को खतरे की भावना

बीसवी शताब्दी के प्रारंभ से ही मुसलमानों के मन में यह संदेह घर करने लगा था कि हिंदू शाषित भारत में इस्लाम खतरे में है। यह भावना विदेशी शासकों के संकेत पर कुछ मुस्लिम नेताओं ने भारत के मुसलमानों में भर दी।

3. काँग्रेस का बढ़ता हुआ प्रभाव

अंग्रेज अपनी 'फोड़ो और राज्य करो ' नीति के अनुसार मुसलमानों को अपने पक्ष में काँग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त कर देना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि हिंदूओं और मुसलामानों में एकता बनी रहे। इसीलिए उन्होंने सांप्रदायिक भावना को उभारा और द्‌वि- राष्ट्र सिद्‌धांत का समर्थन करके मुसलमानों को पृथक- राष्ट्र निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया।

4. काँग्रेस की तुष्टिकरण नीति

काँग्रेस राष्ट्रीय स्वरूप के बारे में शुरू से ही जागरूक थी। यह दावा करते हुए कि वह न केवल हिंदुओं का वरन् मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व करती है। मुसलमानों के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाते हुए वह उनकी अनुचित माँगो को भी स्वीकार करती गई। मुस्लिम लीग ने उसे काँग्रेस की कमजोरी समझकर सांप्रदायिकता का विष फैलाया था।

5. द्‌वितीय विश्वयुद्‌ध

द्‌वितीय महायुद्‌ध के समय राष्ट्रीय - आंदोलन ने काफी जोर पकड़ लिया। भारत की मुस्लिम लीग इस लरह से जानबुझकर अप्रभावित रही। वह पाकिस्तान के निर्माण की माँग करने लगी।

6. निर्वाचन से निराशा

सन् 1936 -37 के निर्वाचन से लीगों को बड़ी निराशा हाथ लगी। निराशा, आक्रोश में तब बदली जब काँग्रेस ने अपने संयुक्त मंत्रीमंडल में लीग के सदस्यों को स्थान देने से इनकार किया। इसे जिन्ना ने अपना अपमान समझा और वह

काँग्रेसी मंत्रीमंडलों का कट्टर विरोधी हो गया। उसने भारत में इस्लाम खतरे में बताया और वह अलग राष्ट्र के निर्माण में जुट गया।

7. **द्वि - राष्ट्र सिद्धांत :-**

सन् 1940 में मुहम्मद अली जिन्ना ने स्पष्ट रूप से द्विराष्ट्र सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अब मुसलमान इस बात पर तुल गए कि उनका अपना अलग देश होना चाहिए।

8. **मुसलमानों में शैक्षणिक पिछड़ेपन का भय**

मुसलमानों में यह विचार उत्पन्न हुआ कि शिक्षा की दृष्टि से मुस्लिम जनता पिछड़ी हुई हैं। अत: वह हिंदुओं से स्पर्धा नहीं कर सकेगी। इसी कारण समय बीतने के साथ-साथ मुसलमान हिंदुओं से अधिकाधिक दूर होते गए।

अन्यकारण :-

9. ब्रिटिश सरकार की नीति।
10. सांप्रदायिक झगड़े।
11. काँग्रेस की भारत को शक्तिशाली बनाने की इच्छा।
12. अखंड भारत के लिए पाकिस्तान
13. सत्ता हस्तांतरण की धमकी
14. सत्ता का लालच
15. लॉर्ड माऊंटबेटन का प्रभाव

ऊपर युक्त सभी कारणों से पाकिस्तान निर्माण हुआ।

3.5.11 छोड़ो भारत आंदोलन

सन् 1941 में जपान ने दुसरे विश्वयुद्ध में प्रवेश किया, और तीन महिनों के भीतर ही जपान ने मलाया सिंगापुर वर्मा पर अधिकार कर लिया और जापानी सेना भारत

की सीमाओं पर युद्ध की दस्तक देनी लगी। इसी बीच युद्ध -प्रयासों में भारतीयों का सहयोग पाने के उद्देश्य से भेजा गया क्रिप्स कमीशन असफल होकर ब्रिटन लौटा गया। मगर इस कमीशन से यह संकेत मिला कि साम्राज्यवादी इरादों को पूरा करने की दृष्टि से ब्रिटीश सरकार देश के तुकड़े करने को तैयार हो गई हैं। इससे काँग्रेस को आघात पहुँचा और वह खुले विद्रोह की तैयारी में जुट गई काँग्रेस की ओर से गांधीजी ने 'छोड़ो भारत' का नारा लगाया। 8 अगस्त, 1942 को यह नारा स्वीकार होते ही गांधीजी सहित सभी शीर्षस्थ नेताओं को ब्रिटीश सरकार ने बंदी बनाया। जेल जाने से पहले गांधीजी ने देसवासियों को 'करो या मरो' यह संदेश दिया। इससे भारतीयों में नयी चेतना और स्फुर्ति आ गई और वे ब्रिटीश सत्ता का विनाश करने के लिए मर मिटने को तैयार हो गए। ब्रिटीश सरकार ने सन् 1942 का अंत होते-होते इस प्रबल जनविद्रोह को पुलिस और सेना के बलबुते पर दबा लिया। परंतु ऐसे किसी दूसरे विद्रोह पर काबू पाने का विश्वास ब्रिटिश अधिकारियों में नहीं था। सत्ता पर उनकी पकड़ कमजोर होने की स्थिति में सत्ता हस्तांतर के विकल्प पर विचार हुआ।

3.5.15 1942 से 1947 मुस्लिम पृथकतावाद :-

जब सन् 1942 में काँग्रेस द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ 'भारत छोड़ो' आंदोलन चलाया गया तो मुस्लिम लीग ने आंदोलन के प्रति कोई सहानुभूति प्रकट नहीं की। बल्कि प्रत्येक संभव तरीके से अंग्रेज सरकार की मदद की। सन् 1942 से 1947 तक काँग्रेस के प्राय: सभी नेता जेल में थे। अत: उनकी अनुपस्थिति में मुस्लिम लीग ने भरपूर लाभ उठाया। और यह प्रचार किया कि काँग्रेस कट्टर हिंदू संस्था है, जो भारत में राज्य कायम करना चाहती है। इसीलिए लीग ने पाकिस्तान की स्थापना हेतु काफी प्रचार किया। 27 से 29 जुलाई 1946 तक लीग परिषद ने स्वतंत्र्य प्रभुत्व संपन्न पाकिस्तान की स्थापना के लिए 'सीधी कार्यवाही' करने धमकी दी। "16 अगस्त, 1946 को 'सीधी कार्यवाही' शुरू करने की तारीख तय हुई। फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में दंगे हुए। बंगाल तथा सिंध में जहाँ मुस्लिम सरकारें थीं, सरकार की छुट्टी की गई। कलकत्ते में भीषण रक्तपात हुआ। लगभग 5000 हिंदू मारे गए व 20,000 घायल घटी। संपति

लुटने तथा महिलाओंपर अत्याचार की असंख्य घटनाएँ हुई। सांप्रदायिक दंगों की आग शीघ्र ही देश में फैल गई।"[44]

3.5.13 ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली की घोषणा

काँग्रेस एवं लीग से सहयोग की कोई आशा न देखकर ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने अपनी सरकारी नीति स्पष्ट करते हुए 20 फरवरी, 1947 को एक ऐतिहासिक घोषणा कर दी, जिसने सारे विश्व को चकित कर दिया। घोषणा में कहा गया कि " ब्रिटिश सरकार जून 1948, तक उत्तरदायी भारतीयों के हाथ में शक्ति सौंप देने का कार्य संपन्न कर देगी। सम्राट की सरकार ऐसी भारतीय सरकार को अपना दायित्व सौंपने को उत्सुक हैं जो जनता के सहयोग की दृढ़ नींव पर स्थित होकर भारत में न्याय तथा शांतिपूर्वक शासन कर सके। इसलिए यह आवश्यक हैं कि भारत के सभी लोग आपस में मतभेदो को भुलाकर अगले वर्ष उन पर डाले जानेवाले भारी उत्तरदायित्व को संभालने के लिए तैयार हो जाए।"[45]

लॉर्ड वँवल हे स्थान पर लॉर्ड माऊंट बेटन को वायसराय नियुक्त किया गया जो भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने का कार्य करेंगे।

3.5.14 भारत के आखिरी वायसराय लॉर्ड माऊंटबेटन

ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली की घोषणानुसार लॉर्ड माऊंट बेटन भारत के आखरी वायसराय बनकर आए। 23 मार्च, 1947 को लॉर्ड माऊंट बेटन ने दिल्ली आकर वायसराय पद भार संभाला। आते ही उन्होंने गांधीजी तथा अन्य नेताओं से विचार - विमर्श करना शुरू किया। "लॉर्ड मांऊट बेटन ने अपनी व्यावहारिक राजनीतिक चतुरता, प्रशाकीय निपुनता और विनम्र व्यवहार से सरदार पटेल तथा नेहरू आदि नेताओं का हृदय जीत लिया था। जहाँ ये नेता भारत-विभाजन के पूर्ण विरोधी थे वहाँ माऊंट बेटन के भारत आगमन के एक महीने के भीतर ही वे विभाजन के समर्थक बन गए।"[46]

3.5.15 भारत विभाजन और आजादी

लॉर्ड माउंट बेटन ने वायसराय पद सँभाल ते ही उनके सामने 'विभाजन' का सबसे बड़ा सवाल खडा था। दिल्ली आते ही उन्होंने नेताओ से विभाजन के प्रस्ताव पर विचार-विमर्श किया। उन्होने पं. नेहरू तथा सरदार पटेल से आग्रह किया कि वे पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ले। तत्कालीन परिस्थिति से विवश होकर काँग्रेस माउंट बेटन की प्रस्ताव से सहमत हो गई। भारत की राजनीतिक समस्या के समाधान के लिए अपनी योजना और भारत-विभाजन की योजना पर स्वीकृति लेने के लिए माउंटबेटन 18 मई, 1947 को ब्रिटेन गए। तथा 3 जून, 1947 को वापस लौटकर आते ही घोषणा की- कि भारतीय एकता को बनाए रखना मुश्किल हैं। इसीलिए शीघ्र ही एक या दो स्वंतत्र उपनिवेशों को सत्ता सौंपी जाएगी। ब्रिटिश संसद ने 18 जुलाई, 1947 को भारतीय स्वंतत्रता अधिनियम 1947 पास किया, जिसके मुख्य उपबंध थे -

[1] 15 अगस्त, 1947 से भारत में भारत और पाकिस्तान नामक दो डोमिनियनों की स्थापना होगी।

[2] भारत में ब्रिटिश भारत के सभी प्रांत शामिल होंगे।

[3] पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल पश्चिमी पंजाब सिंध और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत शामिल होंगे।

[4] देशी राज्यों को किसी एक डोमिनियन में शामिल होने की छूट है।

लॉर्ड माऊंटबेटन ने सिरिल रेड क्लिफ, जो पेशे से वकिल था, उसे सरहदे खींचने का काम सौंपते हुए कहा था - "पंजाब और बंगाल का विभाजन आपको करना है . . इंडिया और पाकिस्तान की आंतरराष्ट्रीय सीमा आपको तय करनी है।"[47] दुःख की बात तो यह है कि सिरिल रेडक्लिफ न तो समाजशास्त्री था और न भुगोलविद्। उसे न पंजाब मालूम था न बंगाल और सिरिल रेडक्लिफ ने नक्शे में ही सीमाएँ तय कर दी।

18 जुलाई, 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, द्वारा भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया। लॉर्ड माउंटबेटन ने 13 अगस्त, 1947 को कराची

जाकर पाकिस्तान संविधान-सभा को सत्ता सौंपी। 14 अगस्त की रात्रि को 'वंदे मातरम्' गीत के साथ भारत स्वंतत्र हुआ। डोमिनियन मंत्रीमंडल के प्रधान मंत्री पं. नेहरू के नेतृत्व में 14 मंत्री नियुक्त हुए। और लार्ड माऊंट बेटन भारत के प्रथम गवर्नर जनरल बने। " भारत ने आजादी के दु:ख और सुख का जशन और नरसंहार का नजारा एक साथ देखा। . . . चारों तरफ जशन था। चारों तरफ मातम। सिरिल रेडक्लिफ ने कहाँ से धरती को काटा था, किसी को कुछ पता नही था। लेकिन जशन और मातम मनानेवालों को सरहद साफ दिखाई दे रही थी। जहाँ हिंदू और सिखों की लाशे पडी थी, वह पाकिस्तान था। जहाँ मुसलमानों की लाशें पडी थी वह इंडिया था। लाशों ने खुद ही सरहदों को तय कर दिया था।"[48]

इसी तरह 5000 वर्षों की सभ्यता को माऊंटबेटन चर्चिल और सिरिल रेडक्लिफ ने पाँच महिनों में तोड़ देया था।

3.5.16 भारत विभाजन का प्रस्ताव और गांधीजी

आरंभ से ही गांधीजी देश विभाजन के विरोधी थे। उन्होंने सार्वजनिक वक्तव्य दिया था कि 'पाकिस्तान का निर्माण मेरी मृत्यु शैय्या पर होगा।' लेकिन देश का विभाजन उनके सामने हुआ। तो फिर प्रश्न यह उठता कि गांधीजी ने इस विभाजन को क्यों स्वीकार कर लिया ? पर उत्तर खोजने से निष्कर्ष निकलता है कि गांधीजी सदा ही विभाजन के विरूद्‌ध बने रहे उनकी इच्छा न होतें हुए भी जब काँग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं ने पाकिस्तान के निर्माण की योजना को स्वीकार कर लिया तो उन्होंने इसका औपचारिक विरोध न करना ही उचित समझा गांधीजी के महत्त्वपूर्ण निर्णयों की उपेक्षा पहिले भी काँग्रेस ने मार्च 1947 में की थी, जब काँग्रेस पंजाब और बंगाल का विभाजन स्वीकारने को तैयार थी। जिसे गांधीजी ने विरोध किया था। अंखड़ता के लिए गांधीजी अस्थायी केंद्रिय मंत्री मंडल बनाने और जिन्ना तथा उनके मुस्लिम लीग सहयोगियों को समूचा शासन चलाने की जिम्मेदारी सौपने के पक्ष में थे। पर उन्हें काँग्रेस नेताओं ने विरोध दर्शाया। जिसेसे गांधीजी को यह ज्ञात हुआ कि काँग्रेस पर उनकी पकड़ कमजोर हो चुकी है।

दो महिनों में काँग्रेस के प्रमुख नेताओं ने देश विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। उच्चस्तरीय वार्ताओं से गांधीजी प्राय: अलग रहे। 14-15 जून, 1947 को आखिल भारतीय काँग्रेस समिति की बैठक ने देश विभाजन के सिद्धांत का अनुमोदन कर लिया। जब उन्हें पता चला कि विभाजन को स्वीकारा गया तब "गांधीजी ने गहरी साँस ली। अपना थका पैर खींच लिया। फिर सुखे गले में एक घूँट-सा लेकर धीमे से बोले - अच्छा होता . . . वे मेरे शरीर को बाँट लेते . . . ईश्वर उन्हे सद्बुद्धि दे।"[49] गलत फैसलों से हिंसा उपजती है ठीक उसी प्रकार विभाजन के प्रस्ताव से सांप्रदायिक दंगो का भूचाल आया। यह अहिंसा का पुजारी आजादी का जश्न मनाने के बजाय शांतता प्रस्तापित करने के लिए चल पड़ा।

3.5.17 मोहम्मद अली जिन्ना

मोहम्मद अली जिन्ना शुरू में हिंदू- मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक और उदारवादी थे। आरंभ के कई सालों तक वे मुस्लिम लीग के सदस्य नहीं बने। क्योंकि वे उसे प्रतिक्रियावादी संस्था मानते थे। वे काँग्रेस को भी राष्ट्रीय संस्था नहीं मानते थे। परंतु पंड़ित नेहरू को इस बात की हैरानी थी कि हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक बॅ. जिन्ना अचानक काँग्रेस को राष्ट्रीय संस्था मानने से इंकार क्यों करने लगे। सन् 1937 के चुनावों के बाद जिन्ना मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधी संस्था बताने लगे और हिंदू इंडिया-मुस्लिम इंडिया इस द्वि राष्ट्रीय स्थिति को बार-बार रेखांकित करने लगे। काँग्रेस को जिन्ना हिंदू संस्था मानने लगे।

"गांधी का असहयोग आंदोलन जिन्ना को पंसद नहीं था। अत: वे उनसे अलग हो गए। परंतु मुस्लिम लीग क अस्तित्व से अधिक वे हिंदु-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। पर सन् 1937 में उन्होने अपना रवैया बदल दिया और मुस्लिम लीग के प्रबल समर्थक बन बैठे।"[50]

जिन्ना ब्रिटिशों के हाथों की कठपुतली बने थे ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि एक साजिश के तहत ही सन् 1934 में जिन्ना साहब ने राजनीति से खफा और निराश होकर बंबई हायकोर्ट की लाखों की प्रैक्टिस छोड़कर लंदन चले गए थे।

उन्होंने यह तो घोषित किया था कि वे राजनीति से संन्यास ले रहे हैं और वकालत करने के लिए लंदन जा रहे हैं। लेकिन लंदन प्रवास के दौरान उन्होंने कहीं भी मुकदमा लड़ा हो ऐसा सबुत नहीं है। फिर वे लंदन में क्या करते थे ? यह सवाल तो खड़ा होता ही है और क्या वजह थी कि उन्हीं बरसों के दौरान इंडियन मुस्लिम लीग के कुछ खास नेता और बड़े- बड़े जमींदार, छोटे -मोठे नवाब और ताल्लुकेदार लंदन आ-जा रहे थे।

लंदन प्रवास के दौरान जिन्ना ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली से तीन बार मिले। जिन्ना की यह महत्त्वाकांक्षा थी कि वे ही नवोदित मुस्लिम राष्ट्र के भाग्य विधाता बनेगें और महत्तवाकांक्षा को सत्य का रूप देने के लिए मुस्लिम लीग के नेता, नवाब और तालुकेदार लंदन आ-जाया करते थे। उन्हें यह बताया गया था कि उनके लिए पाकिस्तान नामक अलग देश बना दिया। ब्रिटिशों ने उन्हें अंदर ही अंदर जिन्ना को लीडर मानने को मजबूर किया। "नहीं तो भारत का मजहबी-नमाजी मुसलमान जिन्ना जैसे गैर मजहबी, बेनमाजी, पोर्क से परहेज न क रनेवाले मुसलमान को अपना लीडर कभी मंजूर नहीं करता . . . मजहब के नाम पर एक गैर-मजहबी और एक ऐसे मुसलमान को लीडर बनाया गया जो कुरान शरीफ नहीं पढ़ सकता था, क्योंकि उसे अरबी या उर्दु तक नहीं आती थी। जो नमाजी नहीं था क्योंकि वह नमाज पढ़ना नहीं जानता था . . . बल्कि जिन्ना के बारे में यहाँ तक कहाँ जाता है कि जिन्ना साहब मुसलमान होते हुए भी मुसलमान नहीं थे।"[51]

लंदन से साजिश भरा दिमाग लेकर जिन्ना भारत आए थे। यहाँ के अनपढ़ मुसलमानों को 'इस्लाम खतरे में है', ऐसा बताकर मजहब के नाम पर उनसे भी अपनी लीडरी मनवा ली। उसके बाद सन् 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में 'पाकिस्तान' की माँग की। और हमेशा अपनी माँग पर अड़े रहे।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि अंग्रेजों ने बॅ. जिन्ना को ही मुस्लिम लीग का नेता क्यों चुना - ब्रिटिश सत्ता की यह नीति थी कि 'फूट डालो और राज्य करो।' इस दृष्टि से ही वे मुस्लिम लीग की ओर देखते थे। वैसे पाकिस्तान निर्माण में ऐसी ब्रिटिश साजिश ही काम कर गई थी। " बॅ. जिन्ना ही मुस्लिम लीग के ऐसे नेता थे कि जो काँग्रेस

के पंडित नेहरू सरदार पटेल और गांधीजी जैसे विद्वानों से मुकाबला कर सकते थे। दो राष्ट्रों के सिद्धांत से धर्म, सांस्कृतिक साक्ष्य और तर्क के आधार पर लड़ सके।"[52]

अंग्रेजों की घिनौनी साजिश तो यह थी कि उन्होंने बॅ. जिन्ना की मरणांतक बीमारी का राज छिपा के रखा था। यदि उनकी बीमारी का पता काँग्रेस को लगा जाता होता तो भारत इंडिया विभाजन की त्रासदी से बच जाता। बॅ. जिन्ना देखने से ही बीमार लगते थे। उम्र में भी वे सत्तर पार कर चुके थे। तब उन्हें तपेदिक की बीमारी हो गई थी साँस की बीमारी तो उन्हें थी ही साथ में ब्रोकाइटिस के प्रकोप से जिन्ना हमेशा ग्रस्त थे। बंबई के जाल पटेल नामक डॉक्टर से इलाज कर रहे थे। उनके पास जिन्ना के एक्सरे मौजूद थे। उन्होंने जिन्ना के लिए साल ड़ेढ साल से ज्यादा व्क्त नहीं बक्शा था। मगर यह राज छिपा के रखा। सन् 1946 में जिन्ना की प्राणघातक बीमारी को राजनीति की बिसात पर हार-जीत का मोहरा बनाया। जिन्ना की बीमारी के चलते ही अंग्रेजों ने सम्राज्यवादी सत्ता, औपनिवेशिक राजनीति और भारत आजादी के महत्त्वपूर्ण निर्णायिक फैसले पहले ही लिए थे।

मोहम्मद अली जिन्ना अंत तक अपनी जिद पर अडे रहें। 'पाकिस्तान' माँगकर उन्होंने अखंड़ भारत को ही दिया तोड़। आखिर पाकिस्तान के भाग्य विधाता बनने की उनकी महत्वकांक्षा तो पूरी हो गई। लेकिन लाशों ने ही भारत पाकिस्तान की सरहद तय कर दी।

निष्कर्ष :-

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का ऐतिहासिकता के परिचय में अनुशीलन करने पर निष्कर्ष कह सकते कि भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालनेवाला बाबर प्रशासनिक क्षमता का धनी था। प्राय: सभी इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि बाबर मध्ययुगीन एशिया के प्रभावशाली सम्राटोंमेंसे एक है। जिसने व्यक्ति, विद्वान, सैनिक,सेनापति, शासक, कुटनीति तथा साम्राज्यशिल्पी के रूप में इतिहास को अपनी अमीर धरोहर राशी सौंपी। बाबर के बारे में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

अतंकाल के गर्भ से उठकर भारत के सिंहासन तक पहुँचा। उसकी प्रत्येक सफलता के पिछे निरतंर संघर्ष था।

बाबर ईश्वर में दृढ़ आस्था रखनेवाला प्रकृति एवं सच्चाई का उत्कट प्रेमी तथा संगीत और अन्य कलाओं में दक्ष रहनेवाला सम्राट था। साथ में साहित्यिक रूचि (बाबरनामा) एवं आलोचनात्मक दृष्टि रखनेवाला व्यक्ति था। कमलेश्वर ने बाबर के भारत आगमन की स्थिति पर भी विचार किया है। राणा सांगा तथा दौलत खाँ लोदी ने अपने स्वार्थ के लिए बाबर को हिंदुस्तान बुलाया था।

वास्तव में मध्यकालीन भारत में किसी साम्राज्य निर्माता होने का प्रमुख आधार यह था कि वह विजेता हो। विजय आयोजक हो और शासन प्रबंधक हो। नि:संदेह बाबर एक विजेता था। उसने सन् 1526 में . . . पानिपत में इब्राहिम लोदी को परास्त करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी। परंतु शासन प्रबंधक के रूप में अपनी योग्यता साबित करने का अवसर नहीं मिला। क्योंकि सन् 1530 मे उसकी मौत हो गयी।

वैसे बाबर पर धर्मांध होने के साथ राम मंदिर तोड़कर वहाँ बाबरी मस्जिद बनवाने का आरोप लगाया गया। किंतु बाबर ने अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए ऐसे सबुत दिए जिससे उसका निर्दोषत्व सिद्ध हो गया। बाबर धर्मांध होता तो वह इब्राहिम लोदी के साथ नहीं लड़ता था। बाबर के काल में मुसलमान मुसलमान के विरोध में लड़ता था। इसी इब्राहिम लोदी ने खाली जगह पर मस्जिद बनवायी जिसे बाबरी मस्जिद कहाँ जाता है। मगर कुछ लोग बाबर को बदनाम करने में तुले हैं। इन लोगों ने बाबर को निर्दोष साबित करनेवाले हर सबुत को मिठाया। यहाँ तक मस्जिद पर लिखा शिलालेख भी तोड़कर बाबर को धर्मांध करार दिया। ततकालीन तथा बाद के इतिहासकारों ने बाबर को दोषी ठहराकर हिंदू-मुस्लिम में 'विभाजन' के बीज बोये।

सत्रहवी सदी में शहाजहाँ ने अपने भाई शहरयार की हत्या करके 6 फरवरी, 1628 में खुद को सम्राट घोषित किया। 6 सिंतबर, 1657 को शहाजहाँ गुर्दे की बीमारी से परेशान हो गया। शहाजहाँ की बीमारी के साथ-साथ ही उत्तराधिकार का युद्ध उसके पुत्र दारा, औरंगजेब, शुजा और मुराद के बीच शुरू हुआ।

सर्व प्रथम मुराद ने प्रांतीय दिवान की हत्या करके अपनी स्वंतत्रता घोषीत कर दी। शुजा ने भी स्वंतत्रता घोषित करके आगरा की ओर चल पड़ा। औरंगजेब तैयारी के साथ आगरे की ओर आय्रा। दारा शिकोह को विद्रोह की जब सूचना मिली तो उसने जसवंत सिंह भाईयों का तथा कासिम खाँ के नेतृत्व में विशाल सेनाएँ शहजादों के विरूद्ध भेजी। उधर औरंगजेब ने उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान करने से पहले ही बीजापूर तथा गोलकुंडा के साथ संधि कर ली थी। किंतू उसने अपनी स्वंतत्रता को घोषित नहीं किया, बल्कि शहाजहाँ को देखने की बात को आगे बढ़ाकर वह आगरा की ओर चल पड़ा।

दीपालपूर पहुँच कर औरंगजेब ने मुराद को अपने पक्ष में कर लिया। तथा उसे ही सिंहासन पर बिठाने का आश्वासन दिया। इस बीच शहाजहाँ ने शुजा मुराद और औरंगजेब को वापस लौट जाने का आदेश दिया। परंतु औरंगजेब आगे बढ़ता ही रहा। अंत में 15 अप्रैल सन् 1558 इ. को धर्मट नामक स्थान पर औरंगजेब और शाही सेनाओं के मध्य भीषण युद्ध हुआ। जिसमें मुराद तथा औरंगजेब की संयुक्त सेनाओं ने जसवंत सिंह एंव कासिम खाँ के नेतृत्ववाली शाही सेना ओ को पराजित कर दिया।

29 मई सन् 1658 ई. को सामूगढ़ के प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र में औरंगजेब और दारा के मध्ये निर्णायक संघर्ष हुआ। दारा का शिपाई खलिल उल्लाह ने गद्दारी की। मुराद तथा औरंगजेब ने शाही सेनाओं को बुरी तरह परास्त कर दिया। दारा पराजित होकर आगरा पहुँचा तत्पश्चात् दारा औरंगजेब से भयभीत होकर आगरा से भागा। और दिल्ली होता हुआ लाहौर पहुँचा। इसी बीच शुजा के राजधानी की ओर आगमन की सूचना पाकर औरंगजेब ने दारा का पीछा छोड़ मुल्तान से दिल्ली वापस आ गया। उधर दारा गुजरात पहुँचा जहाँ शाहनवाज खाँ ने उसका स्वागत किया। तथा जसवंत सिंह ने भी सहायता का आश्वासन दिया। इन लोगों ने सहायता देने से दारा ने साहस के साथ अजमेर की ओर प्रस्थान किया। परंतु देवराई के अंतिम युद्ध में दारा पुन: पराजित हुआ। राजपूतों ने भी उसकी सहायता नहीं की । अत: दारा को भागना पड़ा। परंतु औरंगजेब की सेना निरंतर उसका पीछा करती रही थी। दारा मुल्तान से होता हुआ सक्कर पहुँचा, तथा वहाँ से दादर जाना चाहता था। जहाँ के सरदार मलिक जीवन दारा के एहसान तले दबा था। दादर

पहुँचने से पहले ही उसकी बेगम नादीरा की मृत्यु हो गई। उसकी मौत से दारा बुरी तरह टूट गया। दादर पहुँचते ही मलिक जीवन ने दारा का स्वागत किया। तथा नादीरा की अंतिम इच्छा के नुसार उसका शव वापस हिंदुस्तान भेजा गया। आगे दादर छोड़ते वक्त मलिक जीवन ने दारा के साथ विश्वासघात किया। दारा को बंदी बनाकर मलिक जीवन ने उसे औरंगजेब के सेनापति के हाथों सौंप दिया। इस प्रकार 23 अगस्त, 1659 ई. को दारा औरंगजेब के समक्ष लाया गया। 'विधर्मी' करार देकर दारा को मारा गया।

औरंगजेब ने एक सेना शुजा के विरूद्ध भेजी। अंत में 14 जनवरी सन् 1659 ई. एक युद्ध में शुजा को परास्त कर दिया। युद्ध क्षेत्र से शुजा भागकर ढ़ाक्का पहुँचा तथा बाद में अराकान के शासक से शरण माँगी। किंतु जनवरी सन् 1661 ई. को एक षडयंत्र के आरोप में शुजा का वध कर दिया। उधर दारा के जेष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह ने गढ़वाल में शरण ली। किंतु गढ़वाल के शासक के पुत्र ने सुलेमान को औरंगजेब के पास भेज दिया। औरंगजेब ने सुलेमान को बंदी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेजा, जहाँ मई सन् 1662 में उसकी मृत्यु हो गई। मुराद को औरंगजेब ने छल द्वारा सामूगढ़ के युद्धोपरांत ही मरवा डाला था।

इस प्रकार औरंगजेब के सभी प्रमुख विरोधी सन् 1662 ई. तक समाप्त हो गए। औरंगजेब निर्विवाद रूप से भारत पर शासन करने लगा। शहाजहाँ ने अपने जीवन के अंतिम आठ वर्ष अपने पुत्र के बंदी के रूप में व्यतीत किए।

आधुनिक इतिहासकारों ने दारा की तुलना अकबर से की है क्योंकि दारा तथा अकबर दोनों ही समन्वयवादी संस्कृति के पक्षधर थे। इसी समानता के माध्यम से हम दारा की पराजय को समझ सकते हैं।

अकबर की समन्वयवादी नीति एक निश्चित राजनैतिक उद्देश्य से सबद्ध थी। परंतु दारा का समन्वयवादी प्रयत्न एक वास्तविक मानवतावादी उद्देश्यों से प्रेरित था। उसके समक्ष कोई राजनैतिक स्वार्थ नहीं था। फलत: दारा का व्यक्तित्व एक शांति प्रिय और समन्वयकारी व्यक्ति के रूप में सामने आया तथा अकबर का व्यक्तित्व कुशल

शासक के रूप में सामने आया। उदारवादी होने के कारण दारा को कट्‌टरपंथी वर्ग का प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। इस वर्ग के अमीरों ने दारा का सहयोग नहीं दिया।

उत्तराधिकार के युद्‌ध में धर्म की समस्या उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं थी जितनी राजनैतिक। इस युद्‌ध में सियाओं तथा राजपूतों का एक बड़ा वर्ग औरंगजेब के साथ था और वास्तव में औरंगजेब की सफलता का बहुत बड़ा कारण राजपुतों का सहयोग या तटस्थ रहना ही था, यदि राजपुतों ने दारा का समर्थन किया होता तो औरंगजेब की सफलता संदिग्ध थी।

सत्रहवी शताब्दि में भारत का गौरव अपनी परकाष्ठा पर था और उसकी मध्ययुगीन संस्कृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। परंतु जैसे - जैसे एक - के बाद एक शताब्दियाँ बीती वैसे -वैसे यूरोपीय सभ्यता का सूर्य तेजी से आकाश के मध्य की ओर बढ़ने लगा। भारतीय गगन में अंधकार छाने लगा। भारत में विदेशियों के आगमन के समय राजनीति में दो प्रमुख शक्ति थी - मुगल और मराठा। मुगल पतनोन्मुख हो चले थे। और मराठा विकासोन्मुख थे। वास्तविकता यह है कि, औरंगजेब की मृत्यु (1707) के उपरांत भारत में केंद्रीय सत्ता नहीं रही सारा देश छोटे-मोठे राज्यों में विभक्त हो गया साम्राज्य के विभिन्न राज्यों में संघर्ष चलने लगे और वे एक-दूसरे के राज्य हडपने के लिए निरतंर षड़यंत्र की रचना करने लगे। वैसे जहाँगीर के कालखंड़ में ही विदेशीयोंका आगमन भारत वर्ष में हुआ था। ये विदेशी देश की लडखड़ाती राजनीति और व्याप्त अराजकता को देख रही थी।

विदेशीयों में पोतुगीज अंग्रेज, फ्रान्सी, हॉलड, डच, आदि थे। इनमें से पोर्तुगालीओं का यह खलाशी सन् 1498 में कालीकट बंदरगाह पर उतरा। वहाँ के हिंदू राजा ने उसका स्वागत किया। और उसे व्यापार करने की अनुमति दे दी। वास्को डि गामा को ही सामुद्रिक मार्गो का शोध करने का श्रेय दिया जाता है।

मगर कुछ इतिहासकारों का कहना है कि यह खलाशी नई दुनिया की खोज के लिए नहीं निकले थे। बल्कि वे तो धनसंपत्ति की खोज में निकले हुए सामुद्रिक डाकुओं के बड़े थे। उनकी क्रूरता और धार्मिक कट्‌टरता इतिहास में अंकित हैं। अंग्रेज दीर्घकालीन

व्यापार योजनाओं के आधार पर अपनी जड़े इस देश में जमाना चाहते थे। अंग्रेज धनबल से सैन्य -बल और सैन्य -बल से राजनीतिक शक्ति अर्जित करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने 1600 ई. में. ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापना कि थी।

ई. 1615 में थॉमस रो ने जहाँगीर से व्यापार के साथ -साथ सुरत बंदरगाह पर एक फैक्टरी कायम करने की इजाजत हासिल की।

धीरे-धीरे अंग्रेज प्रबल बन गए। अंग्रेजों की व्यापार नीति का विरोध बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने किया। अंग्रेजों का षड़यंत्र को वह जानता था। अंग्रेज बिना कर दिए व्यापार तो करते थे तथा बिना आज्ञा कलकत्ते किले को सुदृढ कर रह थे। अंग्रेजोने सिराजुद्दौला के शत्रुओं से मिलकर षड़यंत्र किया जिसका परिणाम 1757 में प्लासी का युद्ध हुआ। इस युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय हुई। उसे मारकर अंग्रेजोने मीर जाफर को बंगाल का नवाब बनाया। किंतु सन् 1760 में उसे हटाकर मीर कासिम को गद्दी पर बैठाया। मीर कासिम का झगड़ा भी अंग्रेजों से हुआ। मीर कासिम को बंगाल से भागना पड़ा। सन् 1764 में अंग्रेजों से बक्सर का युद्ध हुआ जिंसमें अंग्रेजों ने विजय प्राप्त कर सन् 1772 में बंगाल का शासन अपने हाथ में ले लिया।

बक्सर युद्ध के बाद अंग्रेजों ने अपनी जड़े पूरी तरह भारत में जमाई। व्यापार के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी अंग्रेज प्रबल बन गए। धीरे-धीरे भारत के गृहोद्योग खत्म हो गए। तत्कालीन जनता में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह पनपता गया। तत्कालीन जनता में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सैनिक असंतोष का विस्फोट सन् 1857 का संग्राम में हुआ।

सन् 1857 का युद्ध शुरू हुआ । मुगल बादशहा बाहदुरशाह नाना पेशवा, तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि ने जंग की तैयारी करके अंग्रेजों से लोहा लिया। मगर इस देश में गद्दारों की कमी नहीं है। गद्दारी के कारण ही सन् 1857 का संग्राम पराजय में बदल गया। किंतु सन् 1857 की संग्राम से भारत में राष्ट्रीय भावना का सतत विकास हुआ। सन् 1857 की क्रांति विफलता के अनेक कारणों में एक कारण यह भी था कि स्वतंत्रता सेनानी एक सुत्र में, एक प्रयोजन और एक उद्देश्य से आबद्ध नहीं

थे। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य था कि भारतवासी चाहे वे देशी नरेश हो अथवा सामान्य प्रजा-जन मजदूर हो अथवा किसान विदेशी शासकों के वास्तविक उद्‌देश्यों तथा उनकी दुर्बलताओं से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। ब्रिटिशों का हर कदम कूटनीतिज्ञ युक्त होता था। ऊपर से ब्रिटिश कभी कभी सुधारवादी और उदारवादी लगते थे। परंतु उनका एकमात्र उद्‌देश्य था भारत का विधिवत शोषण करना।

सन् 1857 के बाद भारत में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना, बंगाल, विभाजन, मुस्लिम लीग की स्थापना, (पहला विश्वयुद्‌ध) होमरूल आंदोलन, जालियावाला बाग हत्याकांड, असहयोग स्वराज्य पार्टी साइमन कमीशन, सविनय अवज्ञा गोलमेज संम्मेलन आदि महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी। सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। धीरे-धीरे मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ता गया। रहमत अली ने पहली बार सन् 1933 में 'पाकिस्तान' की माँग की। बँ. जिन्ना जो कि हिंदु-मुसलमान एकता के पक्ष में वे भी मुस्लिम लीग को ही मुस्लिमों की एकमात्र संघटना मानने लगे। सन् 1938 में दो राष्ट्रों का सिद्‌धांत सामने आया। जिन्ना ने लंदन में अपने आपको मुस्लिम लीग का एकमात्र नेता, जो कि धर्म के नाम पर स्वतंत्र पाकिस्तान बनाने का खाँब दिखाकर लीडरी मनवा ली थी। सन् 1940 के लाहौर अधिवेशन में 'पाकिस्तान' की माँग की।

पाकिस्तान निर्माण में मुस्लिम लीग की स्थापना, इस्लाम खतरे की भावना, काँग्रेस का बढ़ता हुआ प्रभाव, द्‌वितीय विश्वयुद्‌ध, द्‌विराष्ट्र सिंद्‌धांत, ब्रिटिश सरकार की नीति, सांप्रदायिक झगड़े सत्ता हस्तांतरण की धमकी, सत्ता का लालच आदि कारण महत्त्वपूर्ण है।

फरवरी 1947 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की घोषणा से भी इसी परंपरागत ब्रिटिश नीति की पुष्टि हुई। घोषणा में स्पष्ट शब्दों में संकेत दिया था कि सत्ता का हस्तांतरण भारत की एक केंद्रीय सरकार को अथवा कुछ प्रांतीयों सरकारों को किया जा सकता है। अर्थात् ब्रिटिश प्रधानमंत्री किसी न किसी प्रकार से भारत विभाजन के लिए तैयार थी। इससे मुस्लिम लीग और उसके नेताओं का हौसला बढ़ा। आगामी वार्ताओं में उसने 'पाकिस्तान' की माँग पर अधिक जोर दिया।

काँग्रेस ने कई वर्षो तक विभाजन के सिद्धांत को अस्वीकार किया था। लेकिन सन् 1945 की घटनाओं जैसे ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीग के रूख के कारण सांवैधानिक वार्ताओं में आनेवाली बाधाएँ तथा मुस्लिम लीग की सभा पर बहिष्कार की नीति, सांप्रदायिक दंगों की तीव्रता, देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने से बढ़ता हुआ खतरा आदि घटनाओं ने काँग्रेस को इस नतीजे पर पहुँचने के लिए मजबूर किया कि अक्षम और बेअसर मिली -जुली सरकार के बजाय एक विचारधारा की सरकार ही कार्य कर सकती है। इस समूची पृष्ठभूमि में काँग्रेस को देश के विभाजन के कडुए घूँट को पीने के लिए तैयार होना पड़ा।

तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि काँग्रेस के प्रमुख नेताओं में न तो विभाजन का विरोध करने का न साहस बचा था और न वे संभावित गृह युद्ध की विभीषिका से सुझने को राजी थे। एक ओर विकल्प भी था कि काँग्रेस पुन: एक जनसंघर्ष और विद्रोह का रास्ता पकड़ ले। लेकिन सांप्रदायिक उन्माद से उपजी कटुता को देखते हुए यह रास्ता भी खतरों से खाली नहीं दिखता था। यह भी था कि काँग्रेस के नेता जोखिम उठाने और जेल जाने को कम ही तैयार थे क्योंकि अधिकतर काँग्रेस नेता थके हुए थे और उनकी आयु बढ़ चुकी थी। ऐसे में विभाजन को अस्वीकार करने तथा स्वतंत्रता की प्राप्ति में देरी को उन्होंने उचित नहीं समझा।

वाइसराय माऊंटबेटन असाधारण अधिकार लेकर ही भारत आया था जिससे वह स्वंतत्र होकर निर्णय कर सका। इनके पीछे ब्रिटिशों की साजिशी तो थी ही या तो भारत की स्वंतत्रता को कुछ वर्ष स्थगित की जाए या फिर उसे स्वतंत्रता तुकड़ो में दी जाए। छोटे-मोठे आंदोलनों से ब्रिटिश शक्ति धीरे-धीरे ह्रास होती जा रही थी।

मार्च से जून 1947 के बीच में स्वतत्रंता और विभाजन दोनों विषयोंपर महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए। जिसमें स्वयं माऊंटबेटन, बॅ. जिन्ना, गांधी, नेहरू और सरदार पटेल रहे। गांधी के अलावा विभाजन का विरोध किसी ने नहीं किया पर जब वरिष्ठ नेताओं ने विभाजन को स्वीकृत किया तो वे पीछे हट गए और अंतिम निर्णय लेने का भार उन्होने नेहरू और पटेल पर सौंप दिया। नेहरू के बारे में एक प्रसिद्ध इतिहासकार की

टिप्पणी इस प्रकार है : 'जवाहरलाल ने देश के विभाजन का उचित मार्ग निकालने की वाइसराय को पूरी छूट दे दी।' नेहरू के समान पटेल भी विभाजन को तैयार हो गए। और विभाजन का ऐतिहासिक निर्णय लिया गया।

जून 1947 की वाइसराय की घोषणा से विभाजन के वास्तविक स्वरूप की घोषणा कर दी गई। इसके अनुसार पंजाब और बंगाल के बँटवारे अलग पाकिस्तान की गठन और पाकिस्तान की सीमाओं के बारे में लिए गए निर्णयों की घोषणा की गई। आगे ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वाधीनता अधिनियम पारित कर दिया। इसके अनुसार भारत और पाकिस्तान दो नए स्वतंत्र राज्यों का जन्म हुआ।

वायसराय माऊंटबेटन ने सरहदे तय करने का काम सिरिल रेडक्लिफ को सौंपा। जो न पंजाब जानता न बंगाल। ऐसे कसाई के हाथ में विभाजन करने का छुरा सौंप दिया उसने नक्शे में ही सरहदे तय कर दी। हिंदू-मुस्लिम लाशों ने ही अपनी - अपनी सरहदे तय कर दी। 13 अगस्त को माऊंट बेटन ने कराची जाकर पाकिस्तान संविधान को सत्ता सौंपी। अंग्रेजी साजिशों की तहत पाकिस्तान निर्माण हुआ। और 14 अगस्त की रात्री को 'वंदे मातरम्' गीत के साथ भारत को स्वंतत्रता दी गई।

संदर्भ सूची

1. (सं.) वामन शिवराम आपटे, संस्कृत हिंदी, कोश पृ. 174
2. (सं.) रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ.307
3. (सं.) श्यामसुंदर दास, हिंदी शब्द सागर, पृ. 510
4. (सं.) रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर पृ.144
5. (सं.) वामन शिवराम आपटे, संस्कृत हिंदी कोश, पृ. 130
6. (सं.) पुरूषोत्तम अग्रवाल, नालंदा अध्ययन कोश, पृ. 119
7. अखिलश जायसवाल, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 3
8. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 68
9. वही, पृ. 72
10. वही,पृ. 72
11. वही, पृ. 77
12. वही,पृ. 70
13. (सं.) डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 185
14. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 70
15. वही, पृ. 73
16. वही,पृ. 73
17. अखिलेश जायसवाल, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 62
18. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 198
19. अखिलेश जायसवाल, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 71
20. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 190

21. वही,पृ. 205
22. वही,पृ. 205
23. वही,पृ. 206
24. वही,पृ. 206
25. अखिलेश जायसवाल, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 72
26. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ.208
27. वही,पृ. 212
28. वही,पृ. 217
29. वही, पृ. 232
30. वही,पृ. 231
31. वही, पृ. 236
32. वही,पृ. 241
33. वही, पृ. 243
34. वही, पृ. 246
35. वही, पृ. 64
36. धनपति पांडे, आधुनिक भारत का इतिहा, पृ. 64
37. वही, पृ. 72
38. वही,पृ. 73
39. वही, पृ. 75
40. वही, पृ. 77
41. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 309

42. वही, पृ. 246

43. डॉ. वी.एस. भार्गव, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 260

44. वही, पृ. 263

45. वही, पृ. 304

46. वही, पृ. 309

47. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 316

48. वही,पृ. 322

49. वही, पृ. ६१

50. डॉ. अम्बा दत्त पांडे, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन, पृ. 128

51. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 282

52. वही, पृ. 284

*****